वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५७ अंक १२
दिसम्बर २०१९

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक १२

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. सारदा स्तुति: ५८१
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ५८१
३. सम्पादकीय : वेदान्त के आलोक में श्रीमाँ सारदा ५८२
४. श्रीमाँ सारदा का दिव्य दाम्पत्य जीवन (मंजू बोर्डिया) ५८४
५. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/१) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ५८९
६. (भजन एवं कविता) माँ तुम मेरी कैसी माँ हो (डॉ ओम प्रकाश वर्मा), प्रभो! मुझको दो प्यार (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'), व्यर्थ न अपना समय गँवाओ (विजय कुमार श्रीवास्तव) ५९२
७. भगवान श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता (स्वामी गौतमानन्द) ५९३
८. दृग्-दृश्य-विवेक: (७) ५९६
९. सारगाछी की स्मृतियाँ (८६) (स्वामी सुहितानन्द) ५९७
१०. आत्मा का अस्तित्व और लक्षण (डॉ के. डी. शर्मा) ५९९
११. (प्रेरक लघुकथा) मोहि कपट छल छिद्र न भावा (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ६०१
१२. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२४) (स्वामी अखण्डानन्द) ६०२
१३. श्रीमाँ सारदा देवी का पत्र ६०३
१४. (बच्चों का आँगन) महाराणा प्रताप को प्रेरित करने वाली बालिका (स्वामी पद्माक्षानन्द) ६०४
१५. जगज्जननी जानकी (स्वामी आत्मानन्द) ६०५
१६. (युवा प्रांगण) महामना पं. मालवीय के जीवन के चार सूत्र (प्रो. बालकृष्ण कुमावत) ६०७
१७. आध्यात्मिक जिज्ञासा (४८) (स्वामी भूतेशानन्द) ६०९

१८. मध्यम मार्ग : संतुलित जीवन का सुदृढ़ आधार
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ६१०
१९. स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और
भारतीय नवजागरण (अवधेश प्रधान) ६११
२०. साधुओं के पावन प्रसंग (१२)
(स्वामी चेतनानन्द) ६१४
२१. अद्भुत श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द!
(महेन्द्रनाथ दत्त) ६१५
२२. परिग्रहो हि दु:खाय
(स्वामी ब्रह्मेशानन्द) ६१६
२३. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी
विवेकानन्द (३६) ६१८
२४. समाचार और सूचनाएँ ६२०
२५. वार्षिक अनुक्रमणिका २०१९ ६२१

आवश्यक सूचना

१८ दिसम्बर, २०१९ को आश्रम में श्रीमाँ सारदा देवी की तिथिपूजा के उपलक्ष्य में विशेष-पूजा, होम, आरती का आयोजन होगा और तदनन्तर उपस्थित भक्तों को प्रसाद वितरित किया जाएगा। रामकृष्ण मिशन विवेकान्द आश्रम, रायपुर में १४ जनवरी, २०२० को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। १५ जनवरी, २०२० से २१ जनवरी, २०२० तक आश्रम प्रांगण में श्री रामकिंकर महाराज के शिष्य सन्त श्री मैथिलीशरणजी का रामचरितमानस पर प्रवचन होगा। प्रवचन के पहले और बाद में कलाकारों के द्वारा भजन-संगीत होगा। २२ जनवरी, २०२० से २५ जनवरी, २०२० तक वृन्दावन-धाम के पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

आवरण पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द का यह चित्र परिव्राजक काल का हैं। इसकी पृष्ठभूमि में काशी नगरी को दर्शाया गया है।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री नुनिया राम मास्टर, सेक्ट.४९-बी, चंडीगढ़	३१,०००/-

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण के गुणवत्ता सुधार और डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि से 'विवेक-ज्योति' पर आर्थिक भार बहुत अधिक पड़ रहा है । इसलिये हम इसका थोड़ा-सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं । अब **जनवरी, २०२०** से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. १६०/-, एक प्रति रु.१७/-, पाँच वर्षों के लिये रु. ८००/- और दस वर्षों के लिये रु. १६००/-। संस्थाओं के लिये, वार्षिक रु.२००/- और पाँच वर्षों के लिये रु. १०००/-। विदेशों के लिए, वार्षिक शुल्क $ ५० और पाँच वर्षों के लिए $ २५० (हवाई डाक से)।** इसके अलावा 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' के अन्तर्गत **जनवरी, २०२०** से एक पुस्तकालय हेतु सहयोग राशि **१८००/-** होगी। आशा है, आप हमारा पूर्ववत् सहयोग करते रहेंगे ।

स्वामी स्थिरानन्द,
व्यवस्थापक,
'विवेक-ज्योति' कार्यालय

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

५ स्वामी प्रेमानन्द
१८ श्रीमाँ सारदा देवी
२२ स्वामी शिवानन्द
२४ क्रिसमस ईव

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५८६.	श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	महाराणा प्रताप इंटर कॉलेज, पथरदेवा, जि.देवरिया (उ.प्र.)
५८७.	,, ,,	रामगुलाम राय महाविद्यालय डुमरी सालपुर, देवरिया (उ.प्र.)
५८८.	,, ,,	एस.एम.डी.महाविद्यालय, जलालपुर, गोपालगंज (बिहार)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ दिसम्बर २०१९ अंक १२

सारदा-स्तुतिः

धवलवसनवेशा मूर्तकारुण्यदेहा
सुरनरमुनिवन्द्या रामकृष्णार्चिताद्या।
सकलगुणयुता नो वेष्टितांगा सलज्जा
जननमरणभंगा शारदा पातु दिव्या।।
विमलगगनशुद्धा सर्वलोकार्थचिन्ता
विगतविषमदृष्टिश्चिन्मयी शान्तिदात्री।
त्रिभुवनजनधात्री मंगला मर्त्यभूमौ
अवतरति परेशे स्वेच्छयाविर्भवन्ति।।

– श्वेतवस्त्रधारिणी, साक्षात, करुणाविग्रहस्वरूपिणी, देवता-मनुष्य और मुनियों द्वारा वन्दिता, रामकृष्ण द्वारा पूजिता, आदिशक्तिस्वरूपा, समस्त गुणयुक्ता, सर्वांग वस्त्र से आवृता, लज्जाशीला, जन्म-मृत्युनाशकारिणी, अलौकिक भावमण्डिता, श्रीश्रीसारदा देवी हमलोगों की रक्षा करें।

निर्मल नभ सदृश शुद्धा, सकल लोक के मंगल में चिन्तामग्न, भेद-दृष्टिरहित, ज्ञानमयी, शान्तिदायिनी, त्रिभुवन के जीवों को धारण करनेवाली, मंगलदायिनी, श्रीमाँ सारदा इस जगत में स्वेच्छा से आविर्भूत हुई हैं।

पुरखों की थाती

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा।।६६२।।

– सैकड़ों में कोई एक शूर-वीर पैदा होता है, हजारों में कोई एक विद्वान् पैदा होता है और दस हजार में कोई एक अच्छा वक्ता होता है, परन्तु दानी तो यदा-कदा ही पैदा होता है।

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।६६३।।

– एक राजा और एक विद्वान् के बीच कभी तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि राजा तो केवल अपने देश में सम्माननीय होता है, परन्तु विद्वान् सर्वत्र सम्मानित होता है।

बलवानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः।
श्रुतवानपि मूर्खोऽसौ यो धर्म-विमुखो जनः।।६६४।।

– जो व्यक्ति अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है, वह बलवान होकर भी असमर्थ होता है, धनवान होकर भी अकिंचन होता है और पढ़ा-लिखा होकर भी मूर्ख होता है।

सहसा विदधीत न क्रियाम्
अविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्य-कारिणं
गुण-लुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।६६५।।

– सहसा आवेश में आकर कोई काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि विवेकहीनता सारी विपत्तियों की जड़ है, (दूसरी ओर) जो व्यक्ति सोच-समझ कर कार्य करता है, सारी सम्पदाएँ उसके गुणों से लुब्ध होकर स्वयं ही उसका चुनाव कर लेती हैं। (किरातार्जुनीयम्)

सम्पादकीय

श्रीमाँ सारदा देवी जन्म जयन्ती विशेष

वेदान्त के आलोक में श्रीमाँ सारदा

श्रीमाँ सारदा देवी करुणा की जीवन्त विग्रह थीं। कृपा की अनुभूति बहुत-से लोगों को होती है, किन्तु यदि कृपा की साक्षात् मूर्ति का दर्शन करना हो, तो श्रीमाँ सारदा उसकी प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उनके जीवन के प्रत्येक कार्य से, प्रत्येक क्रिया-कलाप से उनकी दिव्यता, उनका ईश्वरत्व, उनका दैवीत्व और सर्वोपरि वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्मस्वरूप की चैतन्यता अभिव्यक्त होती रहती थी। श्रीमाँ के सगुण-साकार नाम-रूप-गुण की चर्चा होती है, किन्तु इसकी पृष्ठभूमि में, इन सबका आधार उनका निर्गुण-निराकार अगाध चैतन्य-उदधि उमड़ता-रहता था, हिलोरें लेता रहता था और जीव-तट से टकराकर असंख्य जीवों को शान्ति-मुक्तिवारि से सिंचित करता रहता था, इस ओर हमारी दृष्टि नहीं जाती। हमारी लेखनी का विषय 'वेदान्त के आलोक में श्रीमाँ सारदा' नामक लघु प्रबन्ध है।

सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि वेदान्त क्या है और वेदान्त का तात्पर्य क्या है? वेदान्त की परिभाषा देते हुए वेदान्तसार के प्रणेता श्री सदानन्द योगीन्द्र जी लिखते हैं – "**वेदान्तो नामुपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।**[१] – अर्थात् 'उपनिषद रूपी प्रमाण को वेदान्त कहते हैं और ब्रह्मसूत्रादि उसमें सहायक हैं।' वेदान्त-तात्पर्य का प्रतिपादन करते हुए सदानन्द योगीन्द्र जी बाद के सूत्रों में लिखते हैं – **जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्। तत्र एव वेदान्तानां तात्पर्यात्।।**[२] – 'शुद्ध चैतन्य रूप जीव तथा ब्रह्म की एकता की अनुभूति ही विषय है, क्योंकि यही वेदान्त का तात्पर्य, यही उद्देश्य है।' वेदान्त ब्रह्म का प्रतिपादक है – **ब्रह्मप्रतिपादकः वेदान्तः।**

यह ब्रह्म सर्वत्र अभिव्यक्त होता है। विभिन्न रूपों में आविर्भूत देवी शक्तियाँ उस एक अखण्ड अद्वय ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति हैं।

देवों ने जब देवी से पूछा – हे महादेवि, तुम कौन हो? तब देवी ने स्वयं कहा था – **अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।। ...** मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। मुझसे ही यह प्रकृति-पुरुषात्मक जगत है। इत्यादि।

ऋग्वेद की ऋचाओं में देवी कहती हैं –

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। ऋग्वेद १०/१२५/३

– मैं ही राष्ट्री अर्थात् सम्पूर्ण जगत की ईश्वरी हूँ। मैं उपासकों को उनका अभीष्ट वसु-धन प्राप्त करानेवाली हूँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वही परब्रह्म सबमें अभिन्न रूप से अनुस्यूत होते हुए भी देश-कालानुसार सर्वत्र विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है।

ब्रह्मस्वरूपिणी श्रीमाँ सारदा

श्रीमाँ सारदा चिन्मयी ब्रह्मस्वरूपिणी हैं, किन्तु जीव-कल्याण हेतु भक्तानुकम्पा कर अनन्तरूपिणी, अनन्त गुणवती रूप में इस जगत में आविर्भूत हैं। श्रीमाँ सारदा के अद्वितीय जीवनीकार स्वामी गम्भीरानन्द जी 'श्रीमाँ सारदा देवी' नामक पुस्तक की अवतरणिका में लिखते हैं – "सब में निहित ब्रह्मस्वरूपिणी वह अदृश्य शक्ति इस काल में पुनः युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण की सहधर्मिणी के रूप में अवतीर्ण होकर एक ओर तो परम पुरुष की लीला की पूर्ति में सहायक हुई और दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों में अपनी महिमा का विस्तार कर और मानव समाज के अकल्याण को दूर कर उसने भावी भारत तथा समस्त विश्व को एक नव अभ्युदय के मार्ग पर ला दिया है। तभी तो दोनों के कृपा-कटाक्ष से कृतार्थ हो स्वामी विवेकानन्द ने सविनय कहा है – 'दास हूँ तुम दोनों का, करूँ प्रणाम सशक्ति तुम्हारे चरणों में।"[३]

श्रीमाँ सारदा के सत्यस्वरूप की सम्यक् उद्घोषणा श्रीरामकृष्ण देव की इस अमोघ वाणी से अभिव्यंजित होती है – "वह (श्रीमाँ) सारदा है – सरस्वती है। ज्ञान देने के लिए आई है। ये जो मन्दिर में माँ (काली) हैं और जो नहबतखाने में (श्रीमाँ) हैं, अभेद हैं। नहबतखाने में जो (श्रीमाँ) हैं, यदि किसी कारण वह किसी पर रुष्ट हो जाएँ, तो उसकी रक्षा करने की मेरी भी क्षमता नहीं है।"

वेदान्त और माँ सारदा का लक्ष्य एक

जैसे वेदान्त का लक्ष्य जीवों के अन्तर्बाह्य कल्मषों को नष्ट कर उसे शुद्ध कर उस सनातन पूर्ण ब्रह्म के साथ

तादात्म्य स्थापित कराना है, ऐक्यानुभूति कराना है। ठीक वैसे ही जगज्जननी ब्रह्मस्वरूपिणी श्रीमाँ सारदा भी जीवों को भगवन्नाम महामन्त्र प्रदान कर उनके चित्त के कल्मषों का नाश कर उन्हें भगवान से मिलाती हैं, ईश्वर का साक्षात्कार कराती हैं।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''जब हम उन्हें जननी के रूप में पाते हैं, तभी हमारे समक्ष उनकी अमोघ ज्ञानदायिनी गुरुशक्ति प्रस्फुटित होती है। जब हम उन्हें गुरु रूप में देखना चाहते हैं, तभी वे हमें अपनी माता के रूप में अपने अंक में खींच लेती हैं। जब हम उन्हें गुरु और जननी के रूप में ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं, तब देखते हैं कि वे इन सबसे परे देवी रूप में अपनी महिमा में प्रतिष्ठित हैं। वास्तव में श्रीमाँ के परस्पर-सापेक्ष इस त्रिविध विकास में किसका कहाँ आदि और कहाँ अन्त है, इसे हम नहीं समझ पाते। ... हमारे लिए वे स्नेहमयी माता, ज्ञानदात्री श्रीसारदा और अलौकिक शक्ति तथा ऐश्वर्यादि से विभूषिता, शुद्धसत्त्वा मोक्षदात्री देवी हैं।''[४]

जैसे वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्म के चिन्तन-मनन-निदिध्यासन से कल्मषयुक्त अधमाधम व्यक्ति का चित्त भी शुद्ध-पवित्र होकर परम तत्त्व की अनुभूति के योग्य हो जाता है और उसके अन्त:करण में शाश्वत शान्ति स्थापित हो जाती है। वैसे ही दीनतारिणी, पतितोद्धारिणी, तनयवत्सला श्रीमाँ सारदा ने भी पतित जनों को दीक्षा देकर अकारण कृपा कर उनके कल्मषयुक्त हृदय को शुद्ध कर उनके हृदय में शाश्वत शान्ति प्रदान की थी, उन्हें श्रीरामकृष्ण के चरणों में सौंपकर मोक्षपद की अधिकारी बना दी थी।

जीवों की मुक्ति हेतु आर्त्त-प्रार्थना श्रीमाँ की इस वाणी से स्पष्ट ध्वनित होती है। एक बार माँ को बहुत देर रात तक जगे देखकर उनके सेवक ने उनसे पूछा, माँ क्या आप सोई नहीं? क्या आपको नींद नहीं आती है? स्नेहवत्सला माँ ने कहा – ''क्या करूँ बेटा! लड़के सब व्याकुल होकर मुझे पकड़ लेते हैं। आग्रह कर उस समय दीक्षा तो ले लेते हैं, पर कहाँ कोई नियम से, नियम से ही क्यों, कोई तो कुछ नहीं करते। जब उनका भार ले लिया है, तब मुझे उन्हें देखना पड़ेगा। इसलिए जप करती रहती हूँ और ठाकुर से उनके लिए प्रार्थना करती रहती हूँ – 'हे ठाकुर! उन्हें चेतना दो, मुक्ति दो, उनके इहकाल और परकाल के बारे में तुम्हीं देखते रहो। इस संसार में बड़ा दुख है। फिर उन्हें आना न पड़े।''[५]

इस प्रकार श्रीमाँ मोक्षदायिनी जगदम्बा हैं प्राणियों को मुक्ति प्रदान करने हेतु कातर हैं।

वेदान्त और श्रीमाँ सारदा का सन्देश : अभय

वेदान्तोपासक ब्रह्म की सर्वत्र व्यापकता से सदा निर्भय रहता है। वह अभय रहता है। सबमें ब्रह्म और सब कुछ एक तत्त्व ब्रह्म होने के कारण वह समदर्शिता, अभेदता, एकता का सन्देश देता है। सबमें अपने आराधक अद्वय एक परम तत्त्व ब्रह्म के होने के कारण वह निडर होता है।

श्रीमाँ सारदा ने भी अभय वाणी दिया था। एक सम्भ्रान्त घर की महिला, जो पथच्युत हो गई थी उसने श्रीमाँ से पूछा – ''माँ, मेरा क्या उपाय होगा? मैं आपके पास इस पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने योग्य नहीं हूँ।'' श्रीमाँ ने अपनी पवित्र भुजा उस महिला के गले में डालकर बड़े स्नेहपूर्वक कहा – ''आओ बेटी! मेरे कमरे में आओ। पाप क्या है, यह समझकर अनुतप्त हुई हो। आओ! मैं तुम्हें मन्त्र दूँगी। ठाकुर के चरणों में सब कुछ सौंप दो, भय क्या है?''[६]

उपनिषद की यह घोषणा है –

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[७]

जो सम्पूर्ण प्राणियों को उस आत्मा में ही देखता है और समस्त प्राणियों में उस आत्मा को देखता है, वह सर्वात्म्यदर्शन के कारण किसी से घृणा नहीं करता है। अगले मन्त्र में है, वह एकत्वद्रष्टा शोक-मोह नहीं करता।

ब्रह्मस्वरूपिणी माँ सारदा ने एक सन्तान के द्वारा समस्त जीवों के लिए निर्दोष, आत्मीयता एवं सबमें स्वजन-दर्शनात्मक अन्तिम वाणी प्रदान किया था – ''यदि शान्ति चाहती हो बेटी, तो किसी का दोष मत देखना। दोष केवल अपना देखना। संसार को अपना बनाना सीखो। कोई पराया नहीं है। बेटी, संसार तुम्हारा है।''[८]

इस प्रकार वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म और ब्रह्मस्वरूपिणी श्रीमाँ सारदा अभिन्न हैं और दोनों की अनुभूति जीवों को मुक्ति प्रदान कर परमात्मा में प्रतिष्ठित करना है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. वेदान्तसार, सूत्र-३, **२.** वेदान्तसार, सूत्र-२७, **३.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. १०, **४.** वही, प. ३०४, **५.** वही, पृ. ३०५, **६.** वही, पृ. ३०७, **७.** ईशावास्योपनिषद मन्त्र-६, **८.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ.३८८.

श्रीमाँ सारदा देवी जन्म जयन्ती विशेष

श्रीमाँ सारदा का दिव्य दाम्पत्य जीवन

मंजू बोर्डिया, उदयपुर, राजस्थान

श्रीमाँ सारदा के दरबार में मूर्ख और विद्वान दोनों का समादर होता है। वे माँ हैं, 'सबकी माँ' हैं। संक्षेप में यही उनका सम्पूर्ण रेखाचित्र है। इसी रेखाचित्र में, मैं अपनी श्रद्धा से कुछ रंग भरने का प्रयास करूँगी। यद्यपि इस महामायी को समझ कौन सका है? सारदानन्द जी महाराज स्वयं जब कह उठे – रंगमयी का रंग देखकर अवाक् हूँ। तो भला मेरी क्या बिसात है, फिर भी श्रीमाँ की ही कृपा से मैं जितना उनका आदर्श समझ पाई हूँ, उसे प्रस्तुत करूँगी।

श्रीमाँ अत्यन्त लज्जाशीला थीं। लोक-चक्षुओं से दूर उनका सादा सरल जीवन था। स्वयं श्रीरामकृष्ण देव भी उनकी इस लज्जाशीलता का सम्मान करते थे, और उन्हें सदा एक आध्यात्मिक निधि की तरह गोपनीय एवं सुरक्षित ही रखना चाहते थे। उनके अन्तरंग भक्त भी श्रीमाँ के चरणों में केवल प्रणाम ही कर पाते थे, क्योंकि वे सदा घूँघट डाले रहती थीं। श्रीरामकृष्ण कहते थे, जैसे राख से ढकी बिल्ली को अचानक पहचानना कठिन है, इसी प्रकार माँ सारदा को समझना आसान नहीं है। इसीलिये श्रीमाँ के जीवन-चरित्र का जितना भी मनन-चिन्तन क्यों न किया जाय, वे रहस्यमयी ही रहती हैं।

श्रीरामकृष्ण देव के पास न जाने कितने साधु-सन्त, त्यागी, तपस्वी अनवरत आते रहते थे। उनकी साधनास्थली दक्षिणेश्वर एक विलक्षण सृष्टि थी! किन्तु अत्यन्त साधारण और सरल श्रीमाँ नीरव एकान्त में लोक-दृष्टि से दूर रहती थीं। उन्होंने केवल गम्भीर आध्यात्मिकता ही उद्घाटित नहीं किया, बल्कि सहनशीलता द्वारा संसार में जीने का मंत्र भी दे गईं। एक साधारण-सी गृहस्थी में एक ही लय में शास्त्रों में वर्णित चारों आश्रमों को उन्होंने विधिवत् जी लिया। उन्होंने विवाहित होकर भी आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। नि:सन्तान होते हुए भी मातृत्व का आदर्श उद्घोषित कर गईं। घर को अरण्य-सा बना वानप्रस्थ जीवन-यापन कीं। गृहस्थी के माया-जाल में भी संन्यासिनी-सा जीवन व्यतीत कीं। उनका तो सम्पूर्ण जीवन एकव्रती था। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के गहन आध्यात्मिक आदर्शों को सहजता से समझकर, सरलता से उन्हें जीकर भी दिखा दिया। श्रीमाँ ठाकुर के आदर्शों का जीवन्त भाष्य थीं। आदर्श श्रीरामकृष्ण देव ने रचा और उसे क्रियान्वित करने का भार माँ सारदा पर छोड़ दिया।

देवी माहत्म्य में देवी जगदम्बा ने देवताओं को आश्वासन दिया था कि जब-जब दानवों के प्रादुर्भाव से विघ्न-बाधायें उत्पन्न होंगी, तब-तब वे अवतीर्ण होकर शत्रुओं का विनाश करेंगी। आज के युग में सर्वत्र नैतिक मूल्यों का ह्रास दिखाई दे रहा है। स्त्री-पुरुष अपनी मर्यादायें भूलकर भौतिकवाद की विलासिता में दिग्भ्रमित हो रहे हैं, विषयवासना के भँवर में फँसकर अपना वास्तविक आत्मिक स्वरूप भूल गये हैं। स्वार्थपरता और संकीर्णता में अपना कर्तव्यबोध खो चुके हैं। अत: श्रीमाँ भौतिकवाद के मधुकैटभ, आतंकवाद और हिंसा के महिषासुर एवं विद्वेष व वैमनस्य के रक्तबीज जैसे दानवों का नाश करने व अभिशप्त मानवों को उनसे मुक्त कर अपने स्नेहसिक्त आगोश में समेटने के लिये आतुर हैं। वास्तव में अगर कोई शक्ति इस विषैले वातावरण को शुद्ध कर सकती है, तो वे हैं केवल 'श्रीमाँ'। स्वामी विवेकानन्द की 'जीवन्त दुर्गा', जिनका स्वामी अभेदानन्द जी आह्वान कर रहे हैं –

प्रैमेकबिन्दुं चिरदग्धचित्ते
विषिञ्च चित्तं कुरु नः सुशान्तम्।

हे माता! तुम अपनी संतानों के प्रति अपना स्नेह भाव बनाये रखो और उनके तापदग्ध चित्त को अपनी प्रेम की एक बूँद से सींचकर उन्हें शान्ति का आस्वादन करा दो। श्रीमाँ अपने बच्चों के अहैतुक प्रेमवश पूर्ण चन्द्रमा की शीतल स्निग्ध चाँदनी की पवित्रता लिये अवतीर्ण हो रही हैं। वे बिखरते हुए परिवार और समाज को पुन: जोड़ने आ रही हैं। क्योंकि उनका आदर्श ही आज के लिये प्रासंगिक युगधर्म है। श्रीमाँ और श्रीठाकुर का दाम्पत्य जीवन वह

आदर्श एवं प्रेरणा है, जो समाज को दिशा निर्देश दे सकता है। इस आदर्श दम्पती ने प्रेम और विश्वास, त्याग और समर्पण के ताने-बाने से एक ऐसे दाम्पत्य जीवन का सृजन किया, जिसमें आध्यात्मिक पवित्रता और परिवार की मधुरता बुनी हुई है। गृहस्थी की तुला के एक पलड़े में त्याग और समर्पण होना चाहिए और दूसरे पलड़े में प्रेम और सहयोग, तभी जीवन सुखमय होता है। श्रीमाँ और श्रीठाकुर का दाम्पत्य जीवन इस प्रकार के आदर्शों का एक अनुपम जीवन्त उदाहरण है। उसी के अनुसार चलने से गृहस्थ जीवन सफल हो सकता है। जहाँ एक से त्याग और समर्पण अपेक्षित होता है, तो दूसरे से प्रेम और सहयोग, दोनों ने ऐसा ही आदर्श जीवन जीकर संसार के सामने प्रस्तुत किया।

कई बार विचार आता है कि श्रीरामकृष्ण जैसे आध्यात्मिक पुरुष ने विवाह क्यों किया? यद्यपि उनके संन्यासी गुरु श्रीतोतापुरीजी ने कहा था कि, स्त्री के निकट रहने पर भी जिसका त्याग, वैराग्य और विवेक सदैव अच्युत रहे, उसे ही ठीक-ठीक ब्रह्म में प्रतिष्ठित मानना चाहिए। ठाकुर के विवाह के सम्बन्ध में सारदानन्दजी ने बहुत से कारण लीलाप्रसंग में दिखाए हैं। ठाकुर अवतार थे। उन्होंने दाम्पत्य जीवन में भी एक आदर्श संन्यासी का जीवन जीकर विश्व के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी सहधर्मिणी श्रीमाँ के द्वारा ईश्वर के मातृत्व की प्रत्यक्ष अवधारणा को स्थापित किया। अत: उनका विवाह लोक-कल्याणार्थ ही हुआ था, सांसारिक जीवन के लिये नहीं।

दिव्य दाम्पत्य जीवन

श्रीरामकृष्ण ने अपने वैवाहिक जीवन के अनेकों दृष्टान्तों द्वारा भक्तों के सामने दाम्पत्य जीवन में पति के कर्त्तव्यों को जीकर दिखाया। वे श्रीमाँ के साथ पति के कर्त्तव्यों के प्रति बहुत सजग थे। वे जानते थे कि पति को अपनी युवावधू का मार्गदर्शन करना बहुत आवश्यक है। ससुराल में समायोजन नहीं होने से ही वर्तमान समाज में कितने कुटुम्ब टूट रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने पति के रूप में युवकों के सामने यह आदर्श प्रस्तुत किया कि किस प्रकार नये परिवेश में लड़की को ससुराल की परिस्थितियों में समायोजित होने के लिए पति को सहयोग करना चाहिए। श्रीठाकुर ने श्रीमाँ का बहुत सहयोग किया था। बड़े प्रेम से उन्हें उठने-बैठने से लेकर, दिये की बाती बनाने व घर के कामों को करने व सिखाने में सहयोग किया था। एक ओर उन्होंने जैसे उच्च आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति के लिए उपयोगी चरित्र-गठन की शिक्षा दी, वैसे ही दूसरी ओर गृहस्थी के नित्य कर्म, देव-द्विज-अतिथि-सेवा, गुरुजनों पर श्रद्धा, छोटों के प्रति स्नेह, परिवार की सेवा में आत्मसमर्पण आदि अनेक विषयों को उन्होंने बड़े धैर्य और प्यार से श्रीमाँ को सिखाया था।

वैसा ही अनूठा विश्वास अपने पति में उस बालवधू का था। गाँव में जब श्रीमाँ ने सुना कि उनके पति पागल हो गए हैं, तो उन्होंने अफवाहों पर विश्वास न कर स्वयं प्रत्यक्ष जाकर देखना उचित समझा। उन्होंने सोचा कि इस स्थिति में तो मुझे वहाँ जाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। वे दक्षिणेश्वर जाने को तैयार हो गईं। वे १८ वर्ष की बालिका थीं। पैदल चलने से मार्ग में बीमार हो गईं। किन्तु विधि की कृपा, मार्ग में उनका स्वागत करने स्वयं 'भवतारिणी काली माँ' आईं। क्योंकि श्रीमाँ उनकी बहन थीं। माँ सारदा ने पूछा – तुम कौन हो? उत्तर मिला – 'मैं तुम्हारी बहन हूँ।' तुम दक्षिणेश्वर जरूर जाओगी। तुम्हारे लिए ही मैंने उन्हें वहाँ रख छोड़ा है।'' इससे श्रीमाँ का दिव्य स्वरूप परिलक्षित होता है। सोचिए जिनकी अगवानी करने स्वयं भवतारिणी आई हो, वे स्वयं क्या थीं? दिव्य दर्शन पाकर वे दूसरे दिन स्वयं को स्वस्थ अनुभव करने लगीं और दक्षिणेश्वर की ओर प्रस्थान कर गईं।

दक्षिणेश्वर काली मन्दिर

दक्षिणेश्वर पहुँचते ही गंगा-घाट पर उतरते समय उन्हें अपने पति का प्रेमस्वर सुनाई दिया - 'अरे हृदु, अशुभ बेला तो नहीं है? पहली बार आ रही है।' ध्वनि के इस आकर्षण की डोर से खिंची वे सीधी उनके कमरे में जा पहुँची। श्रीमाँ को देखते ही श्रीठाकुर बोल पड़े, ''तुम आ गई, अच्छा किया।'' उन्हें जब यह मालूम पड़ा कि वे बीमार हैं, तो व्याकुल हो दुखपूर्वक कहने लगे – तुम इतने

दिन बाद आई हो, अब क्या मेरा सेजो बाबू (मथुर बाबू) है, जो तुम्हारी देखभाल करेगा। किन्तु उन्होंने बड़े प्यार से उन्हें अपने कमरे में ही रहने को कहा – क्योंकि वे बीमार हैं, उनको डाक्टर को दिखाने में यहीं सुविधा होगी और डाक्टर को बुलाकर उनका पूरा उपचार कराया।

श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन कर श्रीमाँ का मानसिक द्वन्द्व समाप्त हो गया। वे पति का दर्शन कर निश्चिन्त हो गईं कि उनके पतिदेव तो देवता हैं। वे उन्हें भूल गये, यह कैसे मानें बल्कि वे तो पहले से भी अधिक कृपालु हो गये हैं। इस स्थिति में श्रीमाँ को अपना कर्त्तव्य निश्चित करने में देर नहीं लगी। उन्होंने स्वयं को अपने पति की सेवा में न्यौछावर कर दिया। वे सारा दिन नहबतखाने में रहकर गृहस्थी के कार्य करतीं, और रात को श्रीरामकृष्ण के कमरे में जाकर उनकी सेवा करतीं। वे उनकी शय्या पर सोने की आज्ञा पा चुकी थीं।

श्रीरामकृष्णदेव का कमरा, दक्षिणेश्वर

इस प्रकार अत्यन्त आनन्द के दिन बीत रहे थे। किन्तु अभी श्रीमाँ को अपने पतिदेव के समक्ष अग्नि-परीक्षा देना बाकी था। एकान्त में एक दिन श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ की परीक्षा ली। उन्होंने श्रीमाँ से स्पष्ट पूछा, "क्या तुम मुझे संसारमार्ग में खींचने के लिये आई हो?" श्रीमाँ ने भी इतनी ही स्पष्टता से रंचमात्र दुविधा किये बिना उत्तर दिया – "नहीं ! भला मैं तुम्हें संसार-मार्ग में क्यों खींचने लगी। मैं तो तुम्हारे इष्टपथ में तुम्हें सहायता करने आई हूँ।" कितनी बड़ी सोच थी श्रीमाँ की? पत्नी का कर्त्तव्य पति की इष्टप्राप्ति में सहयोग करना है। स्त्री नरक की द्वार मानी जाती थी। विशेषकर आध्यात्मिक जीवन के लिये तो स्त्री त्याज्य ही समझी जाती रही। किन्तु यहाँ श्रीमाँ के इस वाक्य का तात्पर्य क्या है? इष्टप्राप्ति में सहयोग करने का। श्रीरामकृष्ण को तो ईश्वर दर्शन हो चुका था। उनकी समस्त साधनायें पूरी हो गई थीं। फिर क्या सहयोग करने आई हैं माँ? सभी सुधीभक्तगण भलिभाँति परिचित हैं कि श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के बाद श्रीमाँ ने ३४ वर्षों तक उनके आदर्शों, संदेशों व संकल्पों को पूरा करने का पूर्ण दायित्व अपने कंधों पर लेकर उसका सफलतापूर्वक निर्वहन किया था। बीमारी की अवस्था में काशीपुर में एक दिन श्रीरामकृष्ण माँ की ओर टकटकी लगाए हुए हैं। श्रीमाँ ने पूछा, क्या कुछ कहना चाहते हो? श्रीरामकृष्ण ने शिकायत के स्वर में कहा, "कलकत्ते के लोग मानो अँधेरे में कीड़ों की तरह कुलबुला रहें हैं, तुम क्या कुछ भी नहीं करोगी? (अपनी ओर इंगित करके) यही सब करेगा?" श्रीमाँ ने उत्तर दिया – "मैं तो औरत हूँ, मैं क्या कर सकती हूँ?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "नहीं, तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। "

इष्टप्राप्ति में सहयोग करने का यही अर्थ है। वे ईश्वर के मातृत्व रूप को स्थापित करने श्रीरामकृष्ण के जीवन में आई थीं। श्रीरामकृष्ण का श्रीमाँ को यह प्रश्न और श्रीमाँ का सहज उत्तर सम्पूर्ण नारी जाति के लिए उत्साहवर्धक संकेत है। नारी पुरुष को नरक की राह में नहीं खींचती। सहयोग का ध्येय उसे पत्नी से अपने पति की सहधर्मिणी बनाता है। ठाकुर एवं श्रीमाँ के दाम्पत्य जीवन ने संसार के सम्मुख यह आदर्श प्रस्तुत किया कि पति-पत्नी का दाम्पत्य जीवन मात्र देह-सुख नहीं है। यह एक अलौकिक आत्मिक सम्बन्ध है, एक धर्म और एक प्राण, दोनों मिलकर उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। दाम्पत्य जीवन आत्माओं का ऐसा पवित्र सम्बन्ध है, जो सांसारिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन में परिणत करता है।

इस दाम्पत्य जीवन की दूसरी मधुर विलक्षणता देखिए। सारे प्रश्न श्रीरामकृष्ण ही नहीं करते हैं बल्कि श्रीमाँ भी उसी रूप में एक दिन श्रीरामकृष्ण के पैर सहलाते हुए पूछती हैं, "तुम मुझे क्या समझते हो? मुझे किस रूप में देखते हो?" श्रीरामकृष्ण ने भी अत्यन्त सहजता से उत्तर दिया, 'जो माँ काली मन्दिर में है, जिसने इस शरीर को जन्म दिया है, अब नहबतखाने में है, वही इस समय मेरे चरण दबा रही है। सचमुच मैं तुम्हें सदा साक्षात् आनन्दमयी के रूप में देखता हूँ।' इस प्रकार श्रीमाँ, श्रीरामकृष्ण के कमरे में, उनके पलंग पर उन्हीं के साथ ८ माह तक शयन

करती रहीं। यह साधारण दाम्पत्य जीवन नहीं था! देह-बोधविहीन ठाकुर की प्राय: सारी रात समाधि में ही व्यतीत होती थी। यह प्राय: प्रतिदिन की बात थी। एक रात्रि समाधि भंग होने पर वे बगल में लेटी श्रीमाँ का रूप-यौवनसम्पन्न देह को देखकर विचार करने लगे, इसी का नाम स्त्री शरीर है, सच बोलो तुम इसे चाहते हो या परमात्मा को? अगर इसे ही चाहते हो, तो यह तुम्हारे सामने है, ग्रहण करो। ऐसा सोचकर ज्योहिं उन्होंने अंग स्पर्श के लिये हाथ बढ़ाया, उनका मन उच्च समाधि में स्थिर हो गया। सारी रात साधारण भूमि पर नहीं उतरा। परन्तु जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण का मन उर्ध्वलोक में विचरण करता था, उसी प्रकार श्रीमाँ का मन भी आराध्यदेव के ध्यान में निमग्न रहता था। अत: दोनों के ही मन समान रूप से पवित्र थे। तभी तो बाद में उन्होंने भक्तों से इस पवित्रतास्वरूपिणी की महिमा बखान करते हुए कहा था कि यदि वह इतनी पवित्र नहीं होती और संयम खो कर मुझे बाध्य करती, तो क्या मैं बच सकता था। श्रीमाँ तो चाँद से भी अधिक पवित्र थीं। वे तो रजनीगंधा जितनी स्वच्छ दागरहित थीं। इसलिए स्वामी अभेदानन्द जी ने उनकी स्तुति में कहा है –

पवित्रं चरितं यस्या: पवित्रं जीवनं तथा।

पवित्रतास्वरूपिण्यै तस्यै कुर्मो नमो नम:।।

यद्यपि श्रीमाँ और श्रीरामकृष्ण के ऐसे दिव्य परस्पर सम्बन्ध अनेक भावों में प्रकट हुए हैं, किन्तु उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति षोडशी पूजा में हुई। उस पूजा के तात्पर्य को श्रीरामकृष्ण की दृष्टि से समझने का स्थान यह नहीं है। श्रीमाँ की दृष्टि से इसे समझने का प्रयास करेंगे।

श्रीरामकृष्ण ने छोटी-सी बालिका को पत्नी के रूप में ग्रहण किया। कामारपुकुर में रहते समय उनको दिव्य प्रेम का आस्वादन कराया और दक्षिणेश्वर में उन्हें व्यावहारिक तथा देवजीवनोचित अपूर्व सम्पदा से विभूषित किया। अब नारी में उस देवीत्व के जागरण का समय आ गया है, जिसे श्रीरामकृष्ण अपनी नरलीला को पूर्ण कर उन्हें छोड़ जायेंगे। अत: उन्हें अपनी हार्दिक पूजा प्रदान कर उन्हें जन-समाज में सम्मानित व महिमान्वित करना तथा उन्हें उनकी शक्ति से अवगत कराना था। इसलिए षोडशी पूजा आयोजित हुई। श्रीमाँ ने भावावास्था में श्रीरामकृष्ण की पूजा तथा साधनाओं के समस्त फलों को ग्रहण किया और बिना साधना किये समस्त सिद्धियों की अधिकारिणी बन गईं। व्यावहारिक दशा में भी उन्होंने सभी जीवों से ब्रह्मभाव रखना सीखा। उनके देवीत्व के पूर्ण विकास के द्वार खुल गये। श्रीरामकृष्ण भी सहधर्मिणी के प्रति सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य-पालन करके दायित्व मुक्त हुए। दोनों आत्मस्वरूप में पूर्णत: एकीभूत हो गये। दाम्पत्य जीवन का ऐसा निर्मल मधुर उदाहरण अन्यत्र असम्भव है।

कोमल संवेदनशीलता श्रीरामकृष्ण के दाम्पत्य जीवन की एक अनुपम विशेषता थी। परवर्ती काल में श्रीठाकुर की महासमाधि के बाद जब राधू ने श्रीमाँ के साथ अनुचित व्यवहार किया, तब श्रीमाँ ने कहा था, ''उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) तो मुझे कभी फूल से भी आघात नहीं किया।'' ऐसा मधुर सम्बन्ध दोनों का था। कोई स्वार्थ नहीं, परस्पर भावनाओं का सम्मान करते थे। श्रीमाँ का पानीहाटी मेले में नहीं जाना आदि दृष्टान्त इसी भाव के सूचक हैं। बिना कहे दोनों एक दूसरे के भाव को समझ जाते थे। श्रीठाकुर ने श्रीमाँ को कभी 'तू' नहीं कहा। एक बार अनजाने में जब उनके मुँह से यह शब्द उच्चारित हो गया, तो उन्होंने कितना पश्चात्ताप किया! वे श्रीमाँ की सुख-सुविधा के प्रति सदा सजग रहते थे। यह आदर्श आज की नारी का स्वातन्त्र्य एवं सशक्तिकरण है। वास्तव में इस देवदम्पती का प्रेमप्रवाह दोनों तटों को स्पर्श करते हुए प्रवाहित होता था।

नहबत, दक्षिणेश्वर

अध्यात्म के क्षेत्र में सम्पूर्ण नारी जाति का श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रदत्त सम्मान अद्वितीय है। परब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके भी वे ब्रह्मरूप को माँ के रूप में देखते रहे। उन्होंने ईश्वर के मातृत्व भाव को स्थापित किया। मातृत्व का आदर्श सर्वोच्च है। समकालीन नारी स्वातन्त्र्य एवं सशक्तिकरण के युग में नारी का इतना सम्मान का दूसरा दृष्टान्त अप्राप्त है। नारी के व्यक्तित्व को पूर्ण एवं समान आत्मसम्मान के साथ देखना ही वास्तविक नारी सशक्तिकरण है। श्रीरामकृष्ण ने नर-नारी को समानता का आसन दिया था। नारी बंधन का

मूल कारण तो भोग-वासना है, वह उसी से जकड़ी हुई है। उससे मुक्ति ही तो वास्तविक सशक्तिकरण है। आत्मा तो लिंग-भेदरहित है। आत्मिक रूप में तो दोनों शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं। अन्तर तो बाह्य दैहिक है। श्रीरामकृष्ण ने इसी सशक्तिकरण का सूत्रपात कर नारी को अभय प्रदान किया। नारी ब्रह्मवादिनी है, उसे कोई बन्धन बाँध नहीं सकता है। वह तो पुरुष के समान ही शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा है। श्रीमाँ का व्यक्तित्व इस बंधनरहित आत्मस्वरूप का ज्वलन्त उदाहरण है।

यद्यपि श्रीमाँ लज्जाशीला थीं और श्रीठाकुर की पूर्ण अनुवर्तिनी थी, फिर भी वे अपना विचार स्वतन्त्रतापूर्वक रखती थीं। भक्तों के समागम के बाद श्रीरामकृष्ण के लिये फल-मिष्टान्न बहुत आते थे। उसे वे नहबतखाने में भेज देते थे। श्रीमाँ उनका अगला भाग निकालकर शेष भक्तों तथा पड़ोसियों को मुक्तहस्त बाँट देती थीं। श्रीरामकृष्ण श्रीमाँ की इस प्रवृत्ति से भलीभाँति परिचित थे। एक दिन उन्होंने कहा कि इतना खर्च करने से कैसे चलेगा? यह सुनते ही श्रीमाँ मौन नहबतखाने लौट गईं। तब श्रीठाकुर ने अत्यन्त व्यग्रता से अपने भतीजे रामलाल से कहा – अरे रामलाल! अपनी चाची को शान्त कर, उनके रुठने से (अपनी ओर संकेत कर बोले) इसका सब नष्ट हो जायेगा। श्रीमाँ की विकासोन्मुखी मातृत्व शक्ति के सम्मुख ठाकुर की यह प्रसन्नता से स्वेच्छापूर्वक पराजय थी। तभी तो वे सबकी माँ के रूप में प्रतिष्ठित हो सकीं और मातृत्व का भार पूर्णरूप से वहन कीं। श्रीमाँ स्वयं भी अपने इस मातृत्वसुलभ व्यवहार के आगे असहाय थीं। एक बार किसी के मुँह से 'माँ' का उद्‌बोधन सुन लेने पर वे मातृभाव के आगे पराजित थीं। इसके कितने ही दृष्टान्त हैं।

नहबत में श्रीमाँ की मूर्ति

मातृत्व भाव की सजगता से वे निडर हो जो उचित लगता, वहीं करती थीं। एक बार योगिन माँ ने पूछा – आप श्रीठाकुर की सम्पूर्ण अनुगामिनी होने पर भी, किसी-किसी क्षेत्र में, उनकी बात क्यों नहीं मानतीं? श्रीमाँ ने मुस्कुराकर उत्तर दिया – क्या मनुष्य सब बातें मानकर चल सकता है? इस उत्तर के पीछे एक स्वतन्त्र चिन्तन था, उनकी स्वतन्त्र अवधारणा थी। एक बार सारा बुल ने श्रीमाँ सारदा से पूछा था कि गुरु के आज्ञा-पालन के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। श्रीमाँ ने बिना हिचकिचाहट के कहा, जब गुरु का चुनाव कर लेते हैं, तब आध्यात्मिक क्षेत्र में उनके सारे आदेशों का पालन करना जरूरी है, किन्तु व्यावहारिक व सांसारिक क्षेत्र में आप अपना विकल्प चुनने के लिए स्वतन्त्र हैं, भले ही वह गुरु के सुझाव से मेल न खाता हो। निस्सन्देह स्वतन्त्र विचारक के रूप में श्रीमाँ एक मिसाल थीं। उन्होंने कभी किसी पर कोई जबरदस्ती नहीं की। निवेदिता के स्कूल में बच्चियों की शिक्षा की वे बहुत प्रशंसा करती थीं। बाल-विवाह नहीं होने देती थीं। उन्हें शिक्षिका या नर्स के प्रशिक्षण के लिये प्रेरित करतीं।

भगिनी निवेदिता के अनुसार श्रीरामकृष्ण देव ने आदर्श नारी की जो कल्पना की थी, वही श्रीमाँ के रूप में प्रकट हुई। परन्तु वे पूछती हैं, "उनके जीवन को प्राचीन भारत की महानारियों की अन्तिम कड़ी माना जाय या नवयुग का प्रारम्भ। श्रीमाँ का जीवन और शिक्षा किसी युग-विशेष की नहीं, देशकालातीत सनातन नारी जाति का आदर्श है। वह तो प्लेटो के नारी प्रत्यय की तरह नित्य निरपेक्ष है। श्रीमाँ नारी-जीवन की पूर्ण पराकाष्ठा को मातृत्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं। मातृत्व की अभिव्यक्ति ही नारी का सही स्वरूप है और इसी आदर्श को आज की नारी को स्वातन्त्र्य सशक्तिकरण का लक्ष्य मानना चाहिए। श्रीमाँ नारी का स्पर्धाविहीन साम्राज्य हैं। नारी मातृत्व के क्षेत्र की एकनिष्ठ साम्राज्ञी हैं। भगिनी निवेदिता श्रीमाँ को सम्पूर्ण नारी जाति का पूर्ण आदर्श मानती हैं। उनके शब्दों में श्रीमाँ ईश्वर के द्वारा निर्मित एक अद्‌भुत कलाकृति हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने श्रीमाँ के रूप में विश्व के लिये एक दिव्य प्रेमपूर्ण पात्र रख छोड़ा है। अब उस दिव्य पात्र के चतुर्मुख विस्तार करने का, माँ के मातृत्व के आदर्श का प्रचार-प्रसार करने का और पृथ्वी पर नि:स्वार्थ अहैतुक प्रेम का साम्राज्य स्थापित करने का समय आ गया है। इसीलिये उनका प्राकट्य हुआ है। यह प्राकट्य तभी फलीभूत होगा, जब प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने जीवन को मातृत्व के इस मधु से आप्लावित कर सके। उस अमृत की बूँद सम्पूर्ण दूषित वातावरण को पवित्र कर सकती है। केवल उस अहैतुक मातृत्व के विकास की, त्याग और समर्पण की आवश्यकता है। ○○○

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

विभीषण की शरणागति या जीव की शरणागति, इस सूत्र पर आपके समक्ष कुछ बातें रखी जा रही हैं। अनगिनत मार्ग हैं, और सभी मार्गों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रत्येक मार्गों में ईश्वर को किसी न किसी रूप में महत्त्व दिया ही गया है। किन्तु मात्रा में भेद है ही। जैमिनी जैसे महापुरुष, कर्मशास्त्र में जिनका मत मीमांसा के आचार्य के रूप में कहा जाता है, वे प्रधानता कर्म को ही देते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर भी तो कर्म के अनुकूल ही फल देगा। **अस्तिचेद् ईश्वरः कोऽपि।**

इसका अभिप्राय यह है कि कर्म सिद्धान्त की यह दृढ़ धारणा है कि व्यक्ति को उसके कर्मों का परिणाम प्राप्त होता है और ईश्वर भी कर्म का ही फल व्यक्ति को देता है। अपने आप में यह सिद्धान्त भी महत्त्वपूर्ण है, इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके द्वारा दोनों ही रूपों में व्यक्ति के जीवन में सजगता आ सकती है – यदि कोई दुख वर्तमान जीवन में उसके समक्ष आया हुआ है और अगर वह उसके इस जन्म के कर्म का परिणाम नहीं है, तो यह मानकर अपने को सान्त्वना दे सकता है कि मेरे ही किसी पूर्वजन्म के कर्म का यह परिणाम है और भविष्य में भी अगर कर्म का फल अनिवार्य है, तो हमें निरन्तर सजग भाव से कर्म करते रहना चाहिए। वहाँ मीमांसा का जो चिन्तन है, वह अपने आप में उचित ही है। महर्षि पतंजलि के योगशास्त्र में साधना का बड़ा विस्तृत वर्णन है। कैसे ध्यान, धारणा, प्रत्याहार और समाधि की स्थिति में साधक पहुँचता है। वहाँ पर वे ईश्वर की शरणागति को महत्त्व तो देते हैं, पर वह विकल्प के रूप में यह कह देते हैं कि – **ईश्वरप्रणिधानात् वा।**

ईश्वर की शरणागति या उसके प्रणिधान से भी इस दिशा में व्यक्ति प्रगति करता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न महापुरुषों, आचार्यों ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, वे सभी किसी-न-किसी रूप में साधक के लिये उपयोगी हैं और विशेष रूप से उन लोगों के लिये, जो उस प्रकार के संस्कार से संस्कृत हैं। इसलिए खण्डन-मण्डन का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। भक्तिशास्त्र में शरणागति को जो महत्त्व दिया गया, उसकी समग्रता में वे साधना को अस्वीकार तो नहीं करते, पर वे मानते हैं कि परिपूर्णता तो भगवान की कृपा से ही सम्भव है और वह कृपा ही नहीं, केवल कृपा। रामायण में वह वाक्य जुड़ा हुआ है, जहाँ पर श्रीभरत कह देते हैं कि –

नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।

७/३६/०

कृपा के साथ एक शब्द और जोड़ देते हैं, 'केवल कृपा'। कृपा को छोड़कर ऐसा अन्य कोई साधन है ही नहीं, कोई माध्यम ऐसा है ही नहीं कि जिससे शोक, मोह और संदेह का समग्र निवारण हो सके। भक्ति साधना का भी क्रम है, और उसमें अन्य क्रमों का भी रामचरितमानस में परिचय प्राप्त होता है, पर गोस्वामीजी जिस पक्ष को महत्त्व देते हैं, वह विभीषण की शरणागति है। विभीषण जब भगवान श्रीराम की शरण में जा रहे हैं, तो प्रारम्भ में भी उनके द्वारा साधना होते रहे हैं, न जाने वे कितने वर्षों से लंका के प्रतिकूल वातावरण में भी भगवान के मन्दिर में भगवान की प्रतिमा का पूजन करते रहे हैं, जप करते रहे हैं, धर्म के आचरण का यथासाध्य प्रयत्न करते रहे हैं। विभीषण के जीवन में साधना का यह पक्ष तो था ही, पर वे वहीं नहीं रुक जाते। न जाने कितने व्यक्ति हैं, संसार में जो नित्य पूजन करते हैं, और वे उस पूजन से एक प्रकार का संतोष का अनुभव करते हैं। अपने आप में यह स्थिति न की अपेक्षा तो श्रेष्ठ है ही, किन्तु कुछ लोग हैं जिनके हृदय में उतने से ही संतोष नहीं होता। गोस्वामीजी का वह

वाक्य, जिसमें वे भगवान से प्रार्थना करते हैं –

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
७/१३०/ख

जब वे लोभी का दृष्टान्त देते हैं, तो उसका अभिप्राय यह है कि लोभी व्यक्ति को चाहे जितना भी धन प्राप्त होता जाय, पर उसको संतोष नहीं होता। उसे कभी नहीं लगता कि बस बहुत हो गया, वह संतुष्ट होना जानता ही नहीं। सांसारिक वस्तुओं को पाने का लोभ तो व्यापक रूप में दिखाई देता है, पर यही लोभ की वृत्ति अगर भगवान के सन्दर्भ से जुड़ जाय, तब यह समझ लेना चाहिए कि वह साधक रुकने वाला साधक नहीं है, उसकी गति क्रमश: आगे की ओर बढ़ती जाती है। इसलिए जो व्यापार में है, उद्योग में है, वह अगर संतोष स्वीकार कर ले, तो उसकी तो उस दिशा में प्रगति नहीं होगी। जैसे व्यापार का असंतोष दुखदाई होता है और साधक के जीवन में भी जो असंतोष होता है, वह भी दुखदाई ही तो होता है। जहाँ असंतोष होगा, वहाँ दुख तो होगा ही। किन्तु इस साधना में असंतोष और दुख साधक को परम कल्याण की दिशा में प्रेरित करता है। विभीषण की जो स्थिति है, वह ठीक इसी प्रकार की है। वे लंका में रहते हैं, पर वे अपनी स्थिति का अनुभव करते हैं। जब हनुमानजी उनसे पूछते हैं कि आप लंका के प्रतिकूल वातावरण में रहकर कैसे धर्म का निर्वाह करते हैं? तो विभीषण जी ने जो दृष्टान्त दिया, वह बड़ा सार्थक था। उन्होंने कहा कि महाराज, मेरी स्थिति तो यही है कि –

जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी। ५/६/१

जैसे बत्तीस दाँतों के बीच में जीभ रहती है, वैसी ही मेरी स्थिति है। आपने देखा होगा, जरा भी असावधानी हो जाय, तो दाँत कब जीभ को दबा देगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। लग रहा है कि कैसी प्रतिकूल परिस्थिति है। संत ने भविष्य की आशा की कल्पना से तो आनन्द ही लिया, पर एक बात यह है कि ऐसी बात तो बहुतों के मुँह से निकलती है। कई बार लोग कहते हैं कि क्या बतावें, मेरे सिर पर इतना बोझ है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। पर अगले दिन आप देखेंगे कि वे कुछ बोझ और लाद ले रहे हैं। अगर बहुत बोझ है, तो आप उतारना चाहते हैं कि बस यह कहने के लिए है कि बहुत बोझ है और बोझ पर और बोझ लादते जा रहे हैं। यह तो एक शाब्दिक विडम्बना है। इसी प्रकार से साधक यदि यह कहने लगे कि क्या बताऊँ, संसार में बड़ी प्रतिकूलताएँ हैं, मेरा मन नहीं लगता भजन में, तो बड़ा असंतुष्ट हूँ। प्रश्न यह है कि सचमुच उसके मन में व्याकुलता है क्या? बेचैनी है क्या? उस असहाय स्थिति का बोध है क्या? इसका अभिप्राय यह है कि विभीषण इतने दिनों से लंका में थे और हनुमानजी से भेंट होने के बाद भी कुछ दिन तक रहे, पर शरणागति की भूमिका तो तभी बनी, जब उनको यह लगने लगा कि नहीं, नहीं, अब तो एक क्षण भी यहाँ रहना सम्भव नहीं है। यही है साधक की दुख-व्यग्रता, जब वह उस वातावरण से अपने को मुक्त करने के लिए व्यग्र हो जाता है। यह मन: स्थिति जब उत्पन्न होती है, तब क्या करें? यहीं सत्संग की भूमिका आती है। सत्संग का उद्देश्य आपने विचार करके देखा? सत्संग का उद्देश्य सुख देना है कि दुख देना है? इसका उत्तर है कि सत्संग के द्वारा पहले दुख उत्पन्न किया जाता है और बाद में सुख दिया जाता है। बात बड़ी विचित्र-सी है, किन्तु इसका अभिप्राय यह है कि संत जो कुछ कहते हैं, उसका उद्देश्य यह है कि व्यक्ति के मन में कुछ ग्लानि का उदय हो, पीड़ा का उदय हो, असंतोष हो। सुनने का अर्थ केवल इतना नहीं है कि व्यक्ति केवल मनोरंजन के स्तर पर उसको सुन ले। वह क्षणिक है। जैसे संसार में और भी मनोरंजन है, उसी प्रकार का वह भी हुआ। पर भक्तों का चरित्र, भक्तों की जीवनगाथा पढ़कर, सुनकर यदि व्यक्ति अपनी ओर दृष्टि डाले कि जो कुछ हम सुन रहे हैं, जो बातें निन्दा के रूप में कही जा रही हैं, वे रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, मन्थरा और सूर्पणखा की वृत्तियाँ कहीं हमारे जीवन में भी तो नहीं हैं?

व्यक्ति अगर ध्यान से सुनेगा और अपने लिये सुनेगा, तो ठीक है। विडम्बना यह है कि कभी-कभी युक्ति और तर्क का उपयोग व्यक्ति उस श्रोता के समान करता है, जिसका अनुभव मुझे दिल्ली के रामकृष्ण मिशन में हुआ था। शनिवार के दिन प्रवचन रखा गया था और जिन दम्पती के यहाँ मैं ठहरा हुआ था, पति-पत्नी मुझे गाड़ी में बैठाकर ले गये थे। उस दिन व्याख्या हुई कि अहंकार ही कुम्भकर्ण है –

मोह दशमौलि तदभ्रात् अहँकार
पाकारिजित काम विश्रामहारी। विनयपत्रिका ५८/४

उस कथा का प्रभाव सुननेवालों पर क्या पड़ा, वह तत्काल मेरे सामने आ गया। वह कितनी प्रभावशील कथा

थी! कथा के बाद मैं आकर गाड़ी में बैठ गया। पतिदेव पहले आ गये थे, तो वे बोले, आपको दो चार-मिनट तो प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, कुम्भकर्ण आ जाय, तब न, चलें। थोड़ी देर में उनकी पत्नी आईं, संकेत उन्हीं की ओर था। पर सबसे विलक्षण स्थिति तब हुई कि जब पत्नी ने आते ही पति से कहा, आज की कथा तुमने सुनी? तुम्हारा ही वर्णन था पूरा। इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों ने अनुभव किया – पति ने अनुभव किया कि उनकी पत्नी कुम्भकर्ण है और पत्नी ने अनुभव किया कि उनके पति कुम्भकर्ण हैं। मैंने कहा, चलिए, रामायण में तो राम और कुम्भकर्ण का युद्ध है, पर यहाँ कुम्भकर्ण से कुम्भकर्ण का युद्ध हो रहा है। सच बात तो यही है कि संसार में अधिकांश युद्ध वस्तुत: ऐसा ही – कुम्भकर्ण से कुम्भकर्ण का, अभिमान से अभिमान का युद्ध है, लोभ से लोभ का युद्ध है, स्वार्थ से स्वार्थ का युद्ध है। हम बात चाहें जो कुछ कहते हों, पर हमारा संघर्ष तो उसी मन:स्थिति में हैं और उस मन:स्थिति में हम कहें कि यह तो बड़ा लोभी है, तो यही न कि अगर कैकेयी के हृदय में लोभ उत्पन्न हुआ और भगवान राम यह कहकर कैकेयी की बात को अस्वीकार कर दें कि ये तो बड़ी लोभी और स्वार्थी हैं, तब तो यह कोई उत्तर नहीं हुआ। भगवान राम ने लोभ का उत्तर त्याग से दिया। लोभ का उत्तर लोभ नहीं है, स्वार्थ का उत्तर स्वार्थ नहीं है। जब यह वृत्ति आ जाती है, तो कथा सुनने के बाद लोगों को सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त हो जाती है, पर उसका उपयोग भी दूसरों के लिए करते हैं। दूसरों के बारे में बताया करते हैं कि यह रावण है, यह कुम्भकर्ण है। किसी महिला के लिए कि यह मन्थरा है, सूर्पणखा है। कथा सुनकर के तो व्यक्ति के मन में एक ग्लानि, एक पीड़ा होनी चाहिए कि ये तो सारे लक्षण हमारे जीवन में ही हैं।

विनयपत्रिका उतनी प्रचलित नहीं है, उतनी लोकप्रिय नहीं है, पर गोस्वामीजी का यह अन्तिम ग्रन्थ है। रामायण के बाद भी गोस्वामीजी ने जो अन्तिम ग्रन्थ लिखा है, वह विनयपत्रिका है। विनयपत्रिका में गम्भीरता है। वह साधकों के लिये बहुत ही उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसका रहस्य यह है कि आप उसके पदों में पाएँगे कि गोस्वामीजी स्वयं को उन पात्रों में ढूँढ़ते हैं, जिन पात्रों का वर्णन उन्होंने रामायण में किया या पुराणों में पढ़ा है। यही विनयपत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता है। वे कहते हैं कि प्रभु, मैं क्या कहूँ, जो स्थिति पुराणों में आई हुई है, वह तो हमारे ही जीवन में है –

लोभ ग्राह, दनुजेस, क्रोध, कुरुराज, बंधु खल मार।
(विनय ९३)

महाराज, गज-ग्राह के युद्ध में आपने ग्राह का वध करके गज को बचाया। यह कथा पुराणों में आती है। यह सतयुग की कथा है। यह भी कथा आती है कि आपने हिरण्यकशिपु का वध करके प्रह्लाद की रक्षा की। द्वापर की एक कथा आती है कि दु:शासन जब द्रौपदी का चीर खींच रहा था, तो आपने द्रौपदी की रक्षा की। वे इन कथाओं की याद दिलाकर ही नहीं रुक जाते, तुरन्त कहते हैं – प्रभु, एक-एक संकट से जो ग्रस्त थे, उनका आपने उद्धार कर दिया, पर मैं तो इन तीनों संकटों से ग्रस्त हूँ। यह है उनका विनय और तब प्रभु ने पूछा, तुम तो अच्छे खासे व्यक्ति हो, कहाँ गज और कहाँ ग्राह! कैसा हिरण्यकशिपु और कैसा प्रह्लाद! गोस्वामीजी व्याख्या करते हैं – प्रभु, मुझे भी लोभ-ग्राह, लोभ के ग्राह ने पकड़ लिया है, वह मुझे खीचें लिये जा रहा है। इसका अर्थ क्या हुआ? सरोवर में जल है और जल की प्यास, व्यक्ति में स्वाभाविक है। यहाँ वह मानसरोवर है। गोस्वामीजी कहते हैं कि जो धन है, वह मानसरोवर है। तो धन की आवश्यकता तो जीवन में होती है। लेकिन उस धन में यह जो ग्राह बैठा हुआ है, वह बड़ा भयानक है।

इसका अभिप्राय क्या है? धन में जब तक लाभ की सीमा है, तब तक वह जल के समान उपयोगी है, पर जब लोभ का ग्राह उसमें आ जाय, तब तो वह पीनेवाले को नीचे की ओर खींचकर ले जायेगा। यही होता है। अर्थ में लोभ और लोभ के द्वारा व्यक्ति नीचे की ओर खींचा जा रहा है, नीचे की ओर चला जा रहा है। आप पढ़ते हैं न! वह जो गज था, उसके परिवार के जो लोग थे, वे उसको अपनी ओर खींचने की चेष्टा करते हैं, लेकिन जब देखते हैं कि यह तो नीचे चला जा रहा है, गहराई की ओर, डूबते चला जा रहा है, तब परिवार के लोग छोड़ देते हैं। यही समाज, परिवार, संसार की स्थिति है। व्यक्ति जब यह अनुभव करता है, तो यही कहता है कि प्रभु जैसे आपने गज की रक्षा की, उसे ग्राह से छुड़ाया, उसी प्रकार से मेरे जीवन में जो लोभ रूपी ग्राह है, इससे मेरी रक्षा कीजिए।(**क्रमश:**)

माँ तुम मेरी कैसी माँ हो?

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

माँ तुम मेरी कैसी माँ हो?
मुझे घोर भवभ्रांति में डूबे, देख दया क्या आती?
एक खिलौना देकर मुझको, क्यों जग में भरमाती?
माँ तुम मेरी कैसी माँ हो?
मुझ दुर्बल को पीड़ित करके, कैसे सुख तुम पाती?
दुर्जन सज्जन संतति तेरी विस्मृत क्यों हो जाती?
माँ तुम मेरी कैसी माँ हो?
तुम हो सिद्धिप्रदायिनी माता, हमको क्यों तरसाती?
कृपा करो माँ दीन दयामयी, भेज रहा यह पाती।
माँ तुम मेरी कैसी माँ हो?

प्रभो ! मुझको दो प्यार

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

दीनबन्धु परमेश ! प्रेम के, तुम हो पारावार।
प्रभो ! मुझको दो अपना प्यार।।
सुख-संपति-धन-मान-बड़ाई सब झूठे के झूठे,
सब कुछ पाकर भी क्या पाया? यदि तुम मुझसे रूठे,
तुम ही मेरी जीवन-नौका के हो खेवनहार।
प्रभो ! मुझको दो अपना प्यार ।।
सरिता चलते-चलते जब-तक सागर में न समाती,
तब-तक उसकी प्रेम-साधना सफल नहीं हो पाती,
हो जाती है धन्य, सिन्धु पर जब होती बलिहार।
प्रभो ! मुझको दो अपना प्यार।।
तुमसे मिलने की आशा में मन रहता बेचैन,
पिघले हुए प्रेम-रस को नित बरसाते हैं नैन,
रुचता नहीं रंच भी मुझको खान-पान-श्रृंगार।
प्रभो ! मुझको दो अपना प्यार।।
जिस पर कृपा-कोर करते तुम, वह हो जाता धन्य,
मुझे तुम्हारे पूर्ण मिलन की रहती चाह अनन्य,
सोना-चाँदी-धन क्या चाहूँ ! क्या माँगू संसार ।
प्रभो ! मुझको दो अपना प्यार ।।
भव–कानन में आकर मेरे खाली दोनों हाथ,
बिना तुम्हारे कौन-किसी का सब दिन देता साथ,
तुम ही हो 'मधुरेश' मीन के नित्य एक आधार ।
प्रभो ! मुझको दो अपना प्यार।।

व्यर्थ न अपना समय गँवाओ

विजय कुमार श्रीवास्तव

शुद्ध चित्त हो निश्चल मन से,
वाणी में हो प्रचुर मधुरता ।
इन्द्रिय संयम सधे जहाँ पर,
काम नहीं किंचित् टिक सकता ।।
प्रभु-चिन्तन, पौरुष की रोटी,
नियत न होने पाये खोटी।
अहंकार, कटुता की जड़ता,
दूर रहे तो मनुज सँवरता ।।
प्रभु ने अवसर दिए अनेकों
क्यों मानव पग पीछे रखता?
स्वावलम्बी सच्चे मन से यदि,
कर्मशील मानव बन सकता ।।
अपने को कुछ ऐसा ढालो,
प्रेम और सेवा का हो बल।
सत्य न छोड़ो जीवन-पथ से
जो जीने का उत्तम सम्बल ।।
स्वाध्याय भी बहुत जरूरी,
सदा बढ़ाता सम्यक् चिन्तन ।
व्यथा बुरी कैसी भी आये,
व्यथित न होता है दुर्बल मन ।।
चाह अगर मानव-तन रहते,
करने की ईश्वर की पूजा ।
जीवों की सेवा से बढ़कर,
अन्य न कोई साधन दूजा ।।
स्वाभाविक कर्मों की गति में,
जिन पर छायी रहती मस्ती ।
प्रभु प्रायः स्वयं ही खेते,
प्रेमपूर्वक उनकी कश्ती ।।
अपने जीवन की बगिया में,
संकल्पों के पुष्प खिलाओ ।
बिना लक्ष्य को भेदे प्यारे,
व्यर्थ न अपना समय गँवाओ ।।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव की प्रासंगिकता

स्वामी गौतमानन्द

(स्वामी गौतमानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ चेन्नई के अध्यक्ष हैं। उन्होंने यह व्याख्यान ८ मई, २०१५ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में दिया था, जिसका अनुलेखन सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है। - सं.)

(गतांक से आगे)

एक बार श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर के अपने कमरे में हैं। उस दिन बड़ा शुभ दिन है। भक्त गंगा में स्नान करके उनको प्रणाम कर रहे हैं। गिरीशचन्द्र घोष श्रीरामकृष्ण देव के पास जाकर बैठ गये। अन्य सभी भक्त तो गंगा-स्नान करके गुरु को प्रणाम कर रहे हैं, किन्तु वे वहीं बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा - ''तुम भी तो जाकर गंगा-स्नान कर लो, आज शुभ दिन है। गंगा माता में स्नान करने से तुम्हारा सब पाप धुल जायेगा। तब गिरीशचन्द्र घोष कहते हैं - ''मेरा पाप तो हिमालय जैसा है, गंगा भी उसको धो नहीं सकेगी, इसलिए मैं स्नान नहीं करूँगा।'' श्रीरामकृष्ण देव ने एक बार कहा, दूसरी बार कहा, तीसरी बार कहने पर उन्होंने कहा, ठीक है, आप बोलते हैं, तो मैं स्नान करके आऊँगा। जाकर किसी तरह स्नान करके आये।

श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के बाद, गिरीशचन्द्र घोष प्रतिदिन अपने घर से सवेरे उठकर गंगा में स्नान करने जाते थे। भक्तों ने देखा, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि जब उनके गुरुदेव जीवित थे और उन्हें कहते थे तुम गंगा-स्नान करो, तो तुम्हारा पाप धुल जायेगा। तब वे कहते नहीं-नहीं, गंगा मेरा पाप को धो नहीं सकेगी, मेरा पाप बहुत है, इसीलिये हम स्नान नहीं करेंगे। अब गुरुदेव जब महासमाधि में शरीर छोड़कर चले गये, अभी रोज जाकर गंगा में स्नान कर रहा है, ये कैसी बात है? एक दिन जब वे स्नान करके आ रहे थे, तब रास्ते में रोककर किसी ने पूछा – उस समय तो आपने गंगा-स्नान को नकार दिया, अभी रोज जाकर स्नान करते हैं। इसका क्या रहस्य है?

गिरीशचन्द्र ने कहा रहस्य बताऊँ तुम लोगों को? हाँ, बताइये। मैं रोज गंगा स्नान करने जाता हूँ, यह सच है। मैं गंगा में कमर तक घुसकर स्नान करता हूँ, यह भी सच है। गंगा में डुबकी लगाता हूँ, यह भी सच है। डूबकी लगाने के बाद उठकर मैं गंगा देवी से कहता हूँ – माँ! तुम्हारे अंदर मैंने अभी स्नान अपने पाप धुलने के लिये नहीं किया है, मेरे पाप तो पहले ही धुल गये हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने तो मेरे सभी पापों को धो दिया है। इस शरीर में अब पाप नहीं है। इस शरीर में श्रीरामकृष्ण देव भरे हुये हैं। श्रीरामकृष्ण देव के इस पुण्य को आपको देने के लिये मैं रोज स्नान कर रहा हूँ। यह है गिरीशचन्द्र घोष की स्थिति। उनको इस उच्च सीढ़ी पर उठाया किसने? भगवान श्रीरामकृष्ण ने। श्रीरामकृष्ण के पास जो जाते हैं, उनको कोई डर नहीं है। गिरीशचन्द्र घोष के जैसा पापी कोई नहीं हो सकता। हमारे पाप, हमारे दोष तो रसोईघर के एक सरसों के दाने जैसे हैं, हमारे पाप तो मिटेंगे ही। श्रीरामकृष्ण ने तो उनके हिमालय पर्वत जैसे पाप को भी धो डाला। गिरीशचन्द्र घोष ऐसे ही अचम्भित करनेवाली बातें किया करते थे।

भगवान श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद गिरीश चन्द्र के कमरे में भक्त लोग बैठे हैं। उन लोगों ने श्रीरामकृष्ण देव को देखा है, उनकी बातें सुनी है। वे लोग गिरीशचन्द्र घोष से भगवान श्रीरामकृष्ण के बारे में बातें कर रहे हैं। किसी भक्त ने कहा, गिरीश बाबू! श्रीरामकृष्ण देव एक सुन्दर बात कहते थे, अगर तुम लोग एक पग मेरे पास आगे आओगे, तो मैं नौ पग नीचे आकर हाथ पकड़कर तुम लोगों को ले जाऊँगा। तब गिरीश बाबू ने उसी क्षण अस्वीकार करते हुए कहा, – ''नहीं, वह झूठ है।'' अरे, हमने श्रीरामकृष्ण के मुँह से सुना है। तुम एक पग आगे आओ, तो मैं नौ पग ऊपर से नीचे आकर हाथ पकड़कर तुम लोगों को ले जाऊँगा। यह उनकी सत्य बात है। किसी ने कहा, नहीं, नहीं यह झूठ है। यदि नहीं, तो सच क्या है, तुम बताओ? तब गिरीश चन्द्र घोष कहते हैं – मैंने वह पहला पग भी नहीं उठाया। वे स्वयं दस पग नीचे आये। वे मेरा हाथ पकड़कर ले गये। ऐसे कल्पतरु, ऐसे दया के सागर, ऐसे कृपा के

सागर हैं भगवान श्रीरामकृष्ण! इसीलिये श्रीरामकृष्ण कहते थे, जो अच्छे गुरु के पास जाता है, उसको ईश्वर का दर्शन होता ही है। तुम लोग सद्गुरु के पास जाकर आध्यात्मिकता सीखो, तो तुम्हें भी भगवान देखने को मिलेंगे, भगवान का अनुभव मिलेगा।

जैसे वैज्ञानिक जीवन सत्य है, वैसे ही भगवान का अनुभव, आध्यात्मिकता, आध्यात्मिक जीवन सत्य है। विज्ञान इसलिये सत्य होता है कि वह अनुभूति पर आधारित है। जो आविष्कार अमेरिका में होता है, वही भारत में भी होता है और एक ही फल मिलता है। इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने बता दिया कि ऐसे आध्यात्मिक जीवन-यापन करने से हमें भी अनुभूति मिलेगी। व्याकुलता के साथ उनको पुकारना चाहिये। व्याकुलता का अर्थ है, आन्तरिकता के साथ।

हम सचमुच हृदय से भगवान को चाहते हैं या घर, बच्चे, और पारिवारिक सुख चाहते हैं। यदि हम हृदय से भगवान को चाहें, तो हमें भगवान अवश्य मिलेंगे। ऐसी व्याकुलता जीवन में आने के लिये कुछ अनुशासन चाहिये। वह अनुशासन क्या है? जहाँ तक मैं जानता हूँ, भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने आध्यात्मिक मूल्यों को इतने सरल भाव से समझाया है कि किसी अवतार के उपदेशों में इतनी सरलता नहीं मिलेगी।

हमारे एक स्वामीजी कहते थे कि महापुरुषों के वचन ठीक ऐसे होते हैं – किसी-किसी के वचन कटहल के फल के जैसे होते हैं। कटहल बहुत मुश्किल से काटा जाता है। कटहल को काट-काट कर खाने लायक बनाने के लिए आधा-एक घंटा का समय लगता है। यदि सावधानी न रहे, तो आपका शरीर खराब हो सकता है, लेकिन कटहल नहीं कटेगा। ऐसे ही किसी-किसी महात्मा का वचन होता है, उसे समझने में बहुत कठिनाई होती है। उसमें सत्य है, यह समझने में कठिनाई होती है। एक दूसरे प्रकार के महात्मा होते हैं, जिनके वचन आम के जैसे होते हैं। आम को खाना आसान है, कटहल जैसा कठिन नहीं है। फिर सावधान नहीं रहने से पूरा कपड़ा खराब हो जायेगा, तब मन भी खराब हो जायेगा। इसलिये बड़ी सावधानी से उसको खाना पड़ेगा। भगवान श्रीरामकृष्ण के वचन कैसे होते है? बिना बीजवाले अंगूर जैसे होते हैं। जैसे मुँह में डालो और खालो। श्रीरामकृष्ण देव ने इतने सरल उपदेश हमें सिखाया है। आध्यात्मिक जीवन मानो वैज्ञानिक जीवन है। स्वामी विवेकानन्द ने इसे अध्यात्म विज्ञान कहा। 'राजयोग' नामक पुस्तक की भूमिका में स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं कि यह राजयोग, जो पतंजलि का योगसूत्र है, यह अध्यात्म विज्ञान है, यह आत्मा को समझानेवाला, आत्मा का साक्षात्कार करानेवाला विज्ञान है, यह अनुभूति के आधार पर खड़ा है।

श्रीरामकृष्ण देव ने धर्म को विज्ञान के रूप से समझाया। जैसे विज्ञान सबके लिये है, वैसे ही आध्यात्मिक अनुभूति भी अँग्रेज, भारतीय, चीनी, जापानी कोई भी हो, किसी भी देश का हो, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सबके लिये है, मनुष्य मात्र के लिये है। आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन में लाने से अपने आप ही व्याकुलता आयेगी। व्याकुलता से भगवान का दर्शन होगा ही होगा। ये आध्यात्मिक मूल्य क्या हैं? इसे श्रीरामकृष्ण समझाते हैं। वे कहते हैं, जो भगवान को देखना चाहता है, उसके लिए पहला सरल आध्यात्मिक मूल्य है – 'सत्यता'। अपने जीवन में सच्चाई लाओ। हम सत्य बोलने से घबराते हैं। लोग कहते हैं, अरे स्वामीजी! सच्चाई बहुत कठिन है। अरे! आप सब, हम सब कभी बच्चे थे। क्या कभी हमने झूठ बोला? बच्चे की अवस्था में किसी बच्चे को आपने झूठ बोलते सुना? हमारा स्वभाव ही है सच बोलना। बाद में पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ हमने झूठ बोलना सीख लिया। यह बड़े दुख की बात है। इसलिये जब हमलोग सच छोड़कर झूठ बोलते हैं, तो मन घबराता है। आपके हृदय की धड़कन बंद हो जाती है कि ऐसा क्यों बोल दिया हमने? क्यों घबराते हैं? क्योंकि वह आपके स्वभाव के विरुद्ध है। मैं उदाहरण देता हूँ। कभी-कभी घर में बड़े लोग, माता-पिताजी दोनों टीवी देख रहे हैं। शायद वह कोई अच्छा सीरियल - रामायण चल रहा है। उन्हें डर है कि कोई बाहर से आकर डिस्टर्ब न कर दे। इसलिये उन्होंने अपने छोटे बच्चे से कहा - तुम दरवाजे पर खड़े रहो, यदि कोई आकर हमें बुलावे, तो बोल देना कि पिताजी घर में नहीं हैं। यह सुनते ही बच्चे का मुँह सूख जाता है। कैसे झूठ बोलूँ? पिताजी तो यहाँ बैठे हैं? किसी के पूछने पर कैसे बोलूँ कि पिताजी अंदर नहीं हैं। जब बच्चा आकर दरवाजे पर जैसे ही खड़ा होता है और बाहर से कोई पिताजी के दोस्त आकर पूछते हैं – पिताजी घर में हैं? यह बच्चा घबरा जाता है। वह कहता है, पिताजी ने कहा है कि वे घर में नहीं हैं। वह झूठ नहीं बोल सकता। हम सब वैसे ही बच्चे हैं। हमारा स्वभाव, स्वच्छ स्वभाव है। इसलिये सत्य को पकड़े रहो। यह बहुत आसान है। पहले थोड़ा-सा कष्ट

हो सकता है, जिसको सत्य बोलने का अभ्यास हो जाता है, वह बहुत आनन्द से रहता है। उसको हृदयरोग, ब्लड प्रेशर, मधुमेह की बीमारी नहीं होती है। वह चंचल नहीं होता। धीर-स्थिर रहता है। इसलिए 'सच का अभ्यास करो'। सत्य से तुम्हारा स्वास्थ ठीक रहेगा। सत्य से हमें समाज में नाम-यश, गौरव, मर्यादा सभी मिलेगा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, जो सत्य का पालन करते हैं, उनको भगवान मिलेगें ही मिलेगें। जो सत्यवादी है, वह भगवान की गोद में बैठा है। अर्थात् उसके पीछे भगवान ही उसके आधार रूप में हैं। वह जो बोलेगा, उसे वह सचमुच करेगा। अगर वह किसी को आशीर्वाद दे कि तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा, तो असाध्य रोग भी दूर होगा ही। क्योंकि उसने बोल दिया है।

श्रीरामकृष्ण एक बहुत सुन्दर उदाहरण देते हैं। इस भौतिक जगत में जो झूठ नहीं बोलते हैं, जो सत्य बोलते हैं, उनकी समाज में बहुत प्रतिष्ठा होती है। एक गाँव में किसी कारण से सभी झगड़ने लगे। सारा गाँव दो भाग में बँट गया। एक कुछ कहता है और दूसरा कुछ कहता है। दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। इसको कौन मिटायेगा? गाँव में बड़े-बड़े मूँछवाले बोल रहे हैं, किन्तु किसी को उन पर विश्वास नहीं है। सब झूठ बोलनेवाले हैं। बगल के गाँव में जा करके देखा। वहाँ भी नहीं मिले। एक-एक कर सोलहवें गाँव में एक आदमी मिला, वह कभी झूठ नहीं बोलता है, हमेशा सच बोलता है। उसको पालकी में ले आये। उसको आसन पर बैठने को कहा। उन्होंने जो निर्णय दिया, उसको सबने मान लिया। श्रीरामकृष्ण इसका सार बोलते हैं, देखा, हमारे गाँव में जो बड़े-बड़े मूँछवाले हैं, इनकी कोई मर्यादा नहीं है। इनका कोई गौरव नहीं है, इनका नाम-यश नहीं रहा। पन्द्रह गाँव के बादवाले को पालकी में ले आये। कितना आदर-सत्कार है सत्य के लिये! संसार में तुम्हें भी आदर-सत्कार मिलेगा। संसार को मालूम हो जाय, विश्वास हो जाय कि यह व्यक्ति सच बोलता है, तो लोग आपके पास दौड़कर आएँगे।

समाचारपत्रों में समाचार आते हैं। उसे पढ़कर हम अचम्भित हो जाते हैं। मुख्य कार्यपालक अधिकारी एक कम्पनी में है। प्रति माह या साल उसको तीन कोटि रुपया दे रहे हैं। उसको एक दूसरी कम्पनीवाला लुभाकर छह कोटि कहकर बुला लेता है। वह मुख्य कार्यपालक अधिकारी अपने बारे में नहीं सोचता है, जो भी सोचता है, कम्पनी के बारे में सोचता है। केवल आज के लिये नहीं, बल्कि पचास साल के बाद भी कम्पनी अच्छी तरह से चलती रहे, उसके लिए वह सोचता है, वैसी व्यवस्था करता है। उसमें कितनी सच्चाई है! उसने अपने लिये नहीं, सच्चाई से कम्पनी के स्वार्थ के लिये अपने को निछावर कर दिया। ऐसे अच्छे आदमी को यह कम्पनीवाला लुभाकर छह करोड़ में लाता है। कितना आदर सत्कार है सत्य के लिये इस संसार में!

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, आध्यात्मिक बनना हो, तो भगवान का दर्शन करो। भगवान का दर्शन करना हो, तो सच्चाई का अभ्यास करो। सच्चाई का अभ्यास करने के लिये आपको विश्वविद्यालय में जाना पड़ता है क्या? कोई शुल्क देना पड़ता है क्या? कुछ भी नहीं करना है। केवल मन में संकल्प करना है कि 'मैं सच बोलूँगा'। इससे आपको भगवान भी मिलेंगे, संसार में नाम-यश भी मिलेगा।

प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिक बनने की शक्ति है। इसके लिए हमें दृढ़ संकल्प लेना चाहिये। सच बोलने से घबराने की जरूरत नहीं है। भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि तुम्हें कभी भी कष्ट-बोध हो या आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन में लाने में कोई कष्ट हो, तो सत्संग में जाओ। जहाँ तुम्हारे जैसे दूसरे लोग भी सत्य का अभ्यास करने के लिये, भगवान को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे सत्संग में, ऐसी संगत में आने से आपको विश्वास हो जायेगा कि अरे हम अकेले नहीं हैं, हमारे जैसे सैकड़ों लोग हैं, जो सच बोलनेवाले हैं और अपने जीवन में आगे बढ़ रहे हैं। ऐसा नहीं है कि सभी लोग सत्य बोलने के लिये तड़प रहे हैं। किन्तु उसमें सत्य बोलकर अपने-अपने कैरियर में आगे बढ़नेवाले, बड़े-बड़े ऑफिस में जाकर नाम-यश कमानेवाले लोग भी हैं। इसलिए आध्यात्मिक मूल्य सत्संग को मत भूलिए। जहाँ भी भगवान श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, माँ सारदा के बारे में सत्संग होता है, वहाँ जाकर आप भी सम्मिलित हो जाइये। तब देखिये आपमें सच बोलने की शक्ति बढ़ जाएगी। आपका संकल्प शक्तिशाली बनेगा। आप कभी सच को नहीं छोड़ेंगे। सच से हमें शक्ति मिलती है, आनन्द मिलता है, धैर्य मिलता है। सच बोलनेवाले का धैर्य अटूट चट्टान के जैसे हो जाता है। उसको कोई डरा नहीं सकता। ऐसे सत्य का हम अपने जीवन में अभ्यास कर सकते हैं। **(क्रमशः)**

दृग्-दृश्य-विवेकः (७)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यतः 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि

अब उस उच्चतर प्रकार की सविकल्प समाधि के विषय में बताया जाता है, जो ध्वनि से सम्बद्ध है –

असङ्गः सच्चिदानन्दः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः ।
अस्मीति शब्दविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥२५॥

अन्वयार्थ – (मैं) **असङ्गः** अनासक्त, **सच्चिदानन्दः** सच्चिदानन्द, **स्वप्रभः** स्वयंप्रकाश (तथा) **द्वैतवर्जितः** द्वैत से रहित **अस्मि** हूँ; **इति अयं** यह **समाधिः** समाधि **शब्दविद्धः** शब्द से सम्बद्ध (अर्थात् शब्दानुविद्ध) **सविकल्पकः** सविकल्प (कहलाती है)।

भावार्थ – ''(मैं) अनासक्त, सच्चिदानन्द-स्वरूप, स्वयंप्रकाश (तथा) (काम-संकल्प आदि) द्वैतों से रहित हूँ;'' – यह (अनुभूति) शब्दानुविद्ध या शब्द से सम्बद्ध सविकल्प समाधि (कहलाती है)।

निर्विकल्प समाधि

अब उस उच्चतर प्रकार की समाधि का वर्णन किया जा रहा है, जो समस्त विकल्पों या विचारों से मुक्त है –

स्वानुभूति-रसावेशाद्-दृश्य-शब्दावुपेक्ष्य तु ।
निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवातस्थित-दीपवत् ॥२६॥

अन्वयार्थ – **तु** परन्तु **दृश्य-शब्दौ** दृश्य तथा शब्द (दोनों) की **उपेक्ष्य** उपेक्षा करके; **स्वानुभूति-रसावेशात्** आत्म-स्वरूप की अनुभूति के रस के आवेश के फल-स्वरूप (होनेवाली) **निवात-स्थित-दीपवत्** वायुरहित स्थान में दीप के समान (चित्त की अवस्था) **निर्विकल्पः समाधिः** निर्विकल्प समाधि (कहलाती) **स्यात्** है।

भावार्थ – परन्तु दृश्य तथा शब्द (दोनों) की उपेक्षा करके; आत्म-स्वरूप की अनुभूति के रस के आवेश के फलस्वरूप (होनेवाली), वायुरहित स्थान में दीप के समान (चित्त की अवस्था) – निर्विकल्प समाधि (कहलाती) है।

वस्तु के द्वारा सविकल्प समाधि

पूर्वोक्त समाधियों के अभ्यास से साधक को अपने सत्-चित्-आनन्द स्वरूप आत्मा की अनुभूति होती है। परन्तु बाह्य जगत् की किसी भी वस्तु की सहायता से इस एकाग्रता का अभ्यास किया जा सकता है। इसके द्वारा भी व्यक्ति ब्रह्म तथा जगत् के स्वरूप को जान सकता है। ब्रह्म तथा आत्मा – एक और अभिन्न हैं –

हृदीव बाह्यदेशेऽपि यस्मिन् कस्मिश्च वस्तुनि ।
समाधिराद्यः सन्मात्रान्नाम-रूप-पृथक्कृतिः ॥२७॥

अन्वयार्थ – **हृदि इव** हृदय के समान ही **बाह्यदेशे अपि** बाह्य स्थानों में भी **यस्मिन् कस्मिन् च वस्तुनि** जिस-तिस वस्तु में **आद्यः** प्रथम प्रकार की **समाधिः स्यात्** समाधि सम्भव है; **सः** वह (समाधि) **सन्मात्रात्** विशुद्ध सत् (ब्रह्म) से **नाम-रूप-पृथक्कृतिः** नाम-रूप का पृथक्करण है।

भावार्थ – प्रथम प्रकार की (दृश्यानुविद्ध-सविकल्प) समाधि – हृदय के समान ही, बाह्य स्थानों में भी जिस-तिस वस्तु में सम्भव है; इस (समाधि) में विशुद्ध सत् (ब्रह्म) से नाम-रूप का पृथक्करण हो जाता है।

अब शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि का वर्णन किया जाता है, जिसका बाह्य पदार्थों की सहायता से अभ्यास किया जाता है –

अखण्डैकरसं वस्तु सच्चिदानन्द-लक्षणम् ।
इत्यविच्छिन्नचिन्तेयं समाधिर्मध्यमो भवेत् ॥२८॥

अन्वयार्थ – **अखण्ड-एकरसं** अखण्ड (देश-काल आदि की सीमा से रहित) और सर्वदा एक समान बना रहनेवाला, **सच्चिदानन्द-लक्षणं** सत्-चित्-आनन्द स्वरूपवाला **(यत्** जो) **वस्तु** तत्त्व है, (**तदेव ब्रह्म** वही ब्रह्म है), **इति इयं** इस प्रकार **अविच्छिन्न-चिन्ता** निरन्तर चिन्तन – **मध्यमः** मध्यम (शब्दानुविद्ध सविकल्प) **समाधिः** समाधि **भवेत्** है।

भावार्थ – अखण्ड (देश-काल आदि की सीमा से रहित) तथा सर्वदा एक समान बना रहनेवाला, सत्-चित्-आनन्द स्वरूपवाला (जो) तत्त्व है, (वही ब्रह्म है), इस प्रकार निरन्तर चिन्तन मध्यम (शब्दानुविद्ध सविकल्प) समाधि है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (८६)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२७-११-१९६१

महाराज – जनसाधारण का धर्म ही कुछ विलक्षण कार्य करना होता है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक जप, अष्ट प्रहर कीर्तन, पाठ और यज्ञ करते हैं। होम की बात सुनते ही अनेक महिलाएँ मानो पागल हो उठती हैं। स्वाहा सुना कि औंधे मुँह साष्टांग प्रणाम करेंगी। दक्षिण भारत में होम में ४००-५०० साड़ियाँ आहुति दी जाती हैं।

इन सबको कानून बनाकर बन्द कर देना चाहिए। बुद्धदेव ने तो वही किया था, किन्तु जनसाधारण को कौन रोकेगा? इसके अतिरिक्त इसका भी एक महत्त्व है – अग्नि को प्रतीक के रूप में ग्रहण किया जाता है। वही बढ़ते-बढ़ते इतना हो गया। किन्तु संन्यासी का यज्ञ आत्मपरक आध्यात्मिक साधना होता है। गीता में तपोयज्ञ, योगयज्ञ का उल्लेख है। यज्ञ का अर्थ है – पूजा, उपासना। ब्रह्मार्पणम् – इसका भी वही तात्पर्य है। किन्तु भोजन के समय इतना उच्च चिन्तन साधारण जन ग्रहण नहीं कर सकते। यह केवल संन्यासियों में प्रचलित था, बाद में यह गृहस्थों में भी प्रविष्ट हो गया। ब्राह्मणों में भोजन के पहले और बाद में क्रिया-विधियाँ हैं, वे बहुत अच्छी हैं।

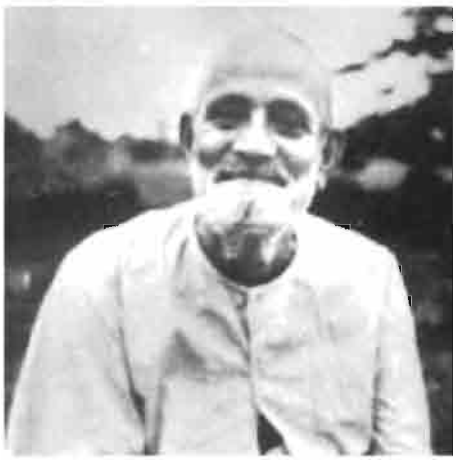

स्वामी प्रेमेशानन्द

'प्राणीय स्वाहा...' अर्थात् पशुओं की तरह भोजन करना नहीं है, भोजन में थोड़ी शुद्धता और पवित्रता लाना है। ब्रह्मार्पणम् अतीव उच्च भाव है। एक व्यक्ति को अचानक ब्रह्मज्ञान हो गया, वह सब कुछ चैतन्यमय देख रहा है। अर्पण, स्रुवा (हवन में घी डालने का लकड़ी का पात्र), यज्ञ, घी, अग्नि, होता (यज्ञ में आहुति देनेवाला) सब चैतन्यमय देख रहा है, जैसे ठाकुर सब कुछ चैतन्यमय देखकर चारों ओर पुष्प-वर्षा करने लगे।

'शर: हि उपासा निशितं सन्ददिथ।' उपासना नहीं रहने से थोड़ा भी आगे नहीं बढ़ा जाता। जो बिना उपासना किए ही कहता है कि निराकार ध्यान अच्छा लगता है, तो यह समझना होगा कि वह व्यक्ति कुछ भी नहीं करना चाहता है। यह सगुण राज्य का क्षेत्र है। यहाँ अक्षरपुरुष, प्रकृति धीरे-धीरे सब घाट (स्तर) को पहचान कर ही पुरुष के पास भेजती है, इसीलिए साकार मूर्ति में निष्ठा अत्यन्त आवश्यक है। क्या इस देश में अवतार ऐसे ही शौकवश बार-बार आते हैं? भगवान की कितनी मूर्तियाँ हैं! नित्य सभी लोग देव-पूजा और स्मरण करते हैं। गौरी, पार्वती, गोपाल बिलकुल घर के बालक-बालिकाओं के समान हैं। भगवान को बिलकुल घर का व्यक्ति बनाकर रख दिया है। कृष्ण, राम, चैतन्य के प्रभाव से देश ओत-प्रोत है। चैतन्यदेव बंगाल में जो कर गए हैं, वह परम्परा आज भी चल रही है। इन सब गाँवों में लोगों का व्यवहार कितना विनम्र है! यह सब चैतन्यदेव का प्रभाव है।

मूल अविद्या का अर्थ क्या है? तीनों गुणों की साम्यावस्था है। जब उसमें से केवल सतोगुण बाहर निकलता है, तब बुद्धि बाहर निकलती है। बुद्धि से रजोगुण में मन और प्राण होता है। मन और प्राण ने शरीर-निर्माण किया। तत्पश्चात् बुद्धि ने आकर उसमें निवास किया।

प्रश्न – निर्वाण का क्या अर्थ है?

महाराज – वाण अर्थात् देह। जब स्थूल, सूक्ष्म, कारण कोई भी देह नहीं रहती है, तब अपने अन्त:करण में स्वरूप का बोध होता है।

मैंने जितना भी पढ़ा है, लिखा है, बोला है, यही देखा

कि आत्म-विकास ही श्रेष्ठ है। अभी लोगों की प्रशंसा नहीं करने पर भी बाद में करना ही होगा। यह जीवन का विज्ञान है – अभ्युदय से होते हुए मोक्ष की ओर।

ठाकुर की स्मृतियों से विभूषित स्थान निस्संदेह भक्तों के प्राणप्रिय हैं। उन्हें देखकर भक्तगण विह्वल हो जाएँगे। किन्तु ज्योंही देखोगे कि ठाकुर के बाल, दाढ़ी आदि को लेकर मारपीट, छीनाझपटी, शुरू हो गई है, त्योंही समझ लेना कि वे लोग ठाकुर को नहीं चाहते! घर की फर्श बदली गई है, इससे हम लोग दुखित हो जाते हैं। किन्तु क्या किया जाय – जैसा कालधर्म! कालधर्म का नियम ही यही है। कितने लोग मुमुक्षु होते हैं, अधिकांश लोग तो अभ्युदय (भौतिक समृद्धि) के ही आकांक्षी होते हैं। अवतार आते हैं अभ्युदय करने। देख रहे हो न सारे देश में महल-अट्टालिका बनाने की कैसी धूम मची है! कैसा अभ्युदय आरम्भ हुआ है! अब इसी तरह राजसिक उन्नति होगी ही। इसके बाद सत्त्वगुणी, गृहस्थों के घर में योगी सब जन्म लेंगे!

७-१२-१९६१

महाराज – देह, प्राण, मन, बुद्धि, इनकी क्रियाओं को अत्यन्त गम्भीरता से निरीक्षण करो। प्राण किस प्रकार सिर के केशों से लेकर पैरों के नखों तक संचरित हो रहा है। मन की कल्पना, बुद्धि का विचार, सब पर ध्यान दो। ये सब तो केवल नौकर हैं। असली है चित्त की पोटली। इसीलिए चित्तवृत्ति-निरोध नहीं करने से कोई अन्य उपाय नहीं है। रामकृष्ण-वृत्ति में अन्यान्य वृत्तियों का लय करना होगा।

मैं देह, मन, बुद्धि का साक्षी हूँ, इसलिए मेरा कर्तृत्वाभिमान नहीं है, ऐसा नहीं है। जब तक पक्का ज्ञान नहीं हो जाता है, तब तक मैं ही भोक्ता हूँ। तब तक मन की इस विषयाभिमुखी गति को देह (कर्म), प्राण (योग), मन (भक्ति) और बुद्धि (ज्ञान), सभी ओर से आक्रमण करना होगा। तभी तो मन की रामकृष्णाभिमुखी वृत्ति तैयार होगी।

८-१२-१९६१

महाराज – इस समय जहाँ सुय्यि महाराज (स्वामी निर्वाणानन्द) रहते हैं (मठ के पश्चिम बरामदे में) वहीं एक दिन देखा कि शरत् महाराज बैठे हैं, कोई व्यक्ति उनके हाथ के पास कंधे को दबा रहे हैं। मैं सामने की बेंच पर बैठा था। उनलोगों की बातचीत को मैं सुन रहा था। राजा महाराज बलराम मन्दिर में आए हैं (वे कई दिनों तक बाहर थे), ऐसा सुनकर शरत् महाराज उन्हें देखने के लिए दौड़े और कमरे में प्रवेश करते समय उनकी हाथ में पीड़ा हुई। उन लोगों में ऐसा परस्पर स्नेहाकर्षण था! ठीक, मानो एक माँ से जन्में सहोदर भाई हों !

प्रश्न – अनुकूल परिवेश की बात स्वामीजी ने कही है। यदि प्रतिकूल परिवेश हो, तो उसका कैसे प्रतिकार करें, उससे कैसे अपनी रक्षा करें?

महाराज – समझ-बूझकर चलना होगा। किन्तु संन्यास के प्रतिकूल होने पर निश्चय ही विरोध करना होगा। अपने माता-पिता को छोड़कर आए हो, भय किसका? नहीं होने पर भिक्षा करके खाओगे। किन्तु 'वे जो करते हैं' ऐसा कहकर केवल प्रार्थना करने से नहीं होगा, उनके निकट हृदय की पीड़ा बताकर आर्तभाव से प्रार्थना करो। इसी के साथ ही, बन्धु-बान्धवों से परामर्श भी करो कि किस प्रकार उससे बच सकते हो और उस सुअवसर की प्रतीक्षा करो। यह संघ है – सबके साथ सद्भावपूर्ण भ्रातृत्व-भावना से रहने की चेष्टा करना ही अच्छा है। तुम्हारे द्वारा प्रयत्न करने से निश्चित ही उनकी कृपा होगी।

मैं देह-मन-बुद्धि नहीं हूँ, यह बात जान लेने से, अन्ततः सुन लेने से भी, घर का 'मैं' अहंकार कुछ कम हो जाता है। ऐसा नहीं होने पर घूम-फिरकर घर का अंहकार, घर का व्यवहार ही चला आता है! कोई पान के लिए, कोई महिला के हाथ के बने व्यंजनों के लिये, कोई सुन्दर मुखाकृति दर्शन के लिए और जो लोग लिखना-पढ़ना सीख गए हैं, वे मान-यश के लिये कंगाल बने रहते हैं। भीतर का रस नहीं पाने से किसी का कुछ भी नहीं होता। यदि योगाभ्यास करके मन को ऊपर उठाकर रखने का अभ्यास नहीं कर सके, तो ज्ञान कहो, भक्ति कहो, वह सब केवल कहने के लिए ही होती है।

बताओ तो, मेरा रूप क्या है? यह देह-मन-बुद्धि गतिशील और विनाशशील है। इसीलिए एक स्थाई आधार की आवश्यकता है और वह है मैं (अहंकार)। पहले नौका में जाने पर लगता था, मानो दोनों किनारों की सब चीजें चल रही हैं। अब तो किसी को भी समझाया जा सकता है, जो साइकिल चलाना जानता है, उसे भी समझाया जा सकता है। **(क्रमशः)**

आत्मा का अस्तित्व और लक्षण

डॉ. के. डी. शर्मा

सेवानिवृत्त प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, बीकानेर

प्रत्येक सचेतन एवं मननशील व्यक्ति के मन में यह प्रश्न अवश्य ही उठता है कि जन्म लेने से पूर्व मैं था या नहीं, यदि था तो क्या, कहाँ और कैसे था? मैं कहाँ से आया हूँ? मृत्यु के बाद मेरा अस्तित्व रहेगा या नहीं और यदि रहेगा, तो मैं क्या, कहाँ और किस प्रकार रहूँगा? मेरा अन्तिम लक्ष्य क्या है और उसे प्राप्त करने का साधन क्या है?

उपरोक्त प्रश्नों के समाधान हेतु हमें पहले यह समझना होगा कि 'आत्मा' क्या है? हम यहाँ 'आत्मा' शब्द का अर्थ और आत्मा के लक्षणों का विवेचन करेंगे, जिससे नास्तिक तथा संशययुक्त व्यक्तियों को भी आत्मा के स्वरूप का यथार्थ बोध हो जाये।

अपनी प्रत्येक वस्तु के लिए व्यक्ति कहता है कि यह मेरा शरीर है, मेरी पत्नी है, मेरे बच्चे हैं, मेरा मकान है, इत्यादि, अर्थात् सब कुछ 'मेरा' में सिमट जाता है। अब प्रश्न उठता है कि 'मैं क्या हूँ'? इस प्रश्न के उत्तर में 'आत्मा' की परिभाषा समाहित है। यह जो 'मैं' शब्द (अहंपद लक्ष्य) से व्यंजित होता है, वह आत्मा का वाचक है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि इन सबका स्वामी आत्मा है। प्रारम्भ में उठाये गये प्रश्नों के समाधान हेतु आत्मा के स्वरूप और लक्षणों का वर्णन करते हैं।

आत्मा का वास्तविक स्वरूप और लक्षण

१. सनातन अस्तित्व – आत्मा का प्रथम लक्षण सत् अर्थात् सनातन अस्तित्व है, इसका विवेचन कई प्रकार से किया जा सकता है –

(क) पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि आत्मा वह पदार्थ है, जिसका संकेत 'अहम् (मैं) पद से किया जाता है। – अहं (मैं) के साथ 'मर गया' या 'सो गया' क्रियाओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता। जैसे कोई नहीं कह सकता कि 'मैं मर गया' अथवा 'मैं सो गया'। अत: आत्मा न मरती है अथवा न सोती है अर्थात् आत्मा शाश्वत है।

(ख) जिस प्रकार जल का स्वाभाविक गुणधर्म शीतलता है, ताँबा का स्वाभाविक गुणधर्म हरा रंग है, मछली की प्रकृति जल में रहना है, उसी प्रकार आत्मा का स्वाभाविक धर्म 'जीवन' है, मृत्यु नहीं।

(ग) विज्ञान के ऊर्जा-संरक्षण नियम से ऊर्जा की न तो उत्पत्ति होती है तथा न ही नाश होता है। गीता (अ. २, श्लोक १६) में कहा गया है – **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:।** – अर्थात् जो कभी नहीं था, वह उत्पन्न नहीं होता और जो है, उसका कभी अभाव नहीं होता।

जब कोई पूछे कि 'जन्म लेने से पहले मैं था या नहीं और मृत्यु के बाद मैं रहूँगा या नहीं।' इसका उत्तर देने से पूर्व हम उससे पूछें कि 'आप इस समय विद्यमान हैं या नहीं, यदि इस समय आप विद्यमान हैं, तो आप पहले भी विद्यमान थे और आगे भी विद्यमान रहेंगे।' उपरोक्त सभी तथ्यों से सिद्ध होता है कि आत्मा का प्रथम लक्षण सनातन अस्तित्व है।

२. ज्ञान – आत्मा का द्वितीय लक्षण चित् अथवा ज्ञान है। आत्मा के ज्ञान के कारण मनुष्य को हर समय कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य रहता है। जब कोई मनुष्य यह अनुभव करता है कि अमुक विषय में वह कुछ भी नहीं जानता, तब भी वह कम से कम इतना अवश्य जानता है कि 'वह कुछ भी नहीं जानता' और यह भी एक प्रकार का ज्ञान ही है। केवल जाग्रत अथवा केवल स्वप्नावस्था में ही नहीं, अपितु सुषुप्ति अवस्था में भी कुछ-न-कुछ ज्ञान अवश्य रहता है, क्योंकि इस अवस्था में भी चेतना रहती है। उदाहरणस्वरूप सुषुप्ति अवस्था में किसी मनुष्य को मच्छर शरीर के जिस भाग में काटता है, उसका हाथ तुरन्त स्वत: ही उस स्थान पर जाकर मच्छर को भगा देता है। मनुष्य के मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु दो प्रकार के होते हैं - (१) संवेदक तन्तु, जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य ज्ञान को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं, और (२) क्रियाशील तन्तु, जो मस्तिष्क के आदेशों को हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों तक पहुँचाते हैं। मस्तिष्क के ये ज्ञानतन्तु सदा सुषुप्ति अवस्था में भी क्रियाशील रहते हैं। सुषुप्ति अवस्था में मच्छर काटने से जो पीड़ा होती है, उसकी सूचना तुरन्त मस्तिष्क तक पहुँचा दी जाती है और मस्तिष्क हाथ को आज्ञा देता है कि काटे हुए अंग को मलकर पीड़ा दूर कर दो। मनुष्य को गहरी निद्रा में इसका पता भी नहीं चलता।

अत: सुषुप्ति में भी किसी-न-किसी रूप में, कुछ-न-कुछ ज्ञान निरन्तर बना रहता है।

हमारे भीतर ज्ञान निरपेक्ष, नि:सीम, व्यापक और पूर्ण है। सम्पूर्ण ज्ञान जिसे हम बाहर खोजते हैं, हमारे भीतर है, वह केवल अज्ञान के आवरण से ढका हुआ है – **अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव:।** (गीता ५/१५)

अर्थात् अज्ञान से ज्ञान आवृत है, उसी से सब जीव मोहित हो रहे हैं। ज्ञान का कभी अभाव नहीं रहा। 'अज्ञान' का अर्थ अधूरे ज्ञान से है। पूर्ण ज्ञान होने पर अभिमान मिट जाता है। बौद्धिक ज्ञान को महत्त्व देना ज्ञान को ढकना है। जिस प्रकार दो अरणियों के मन्थन से अग्नि प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भीतर के ज्ञान को बाहर खींचना ही वास्तविक ज्ञान है। बाहर से दिया हुआ 'ज्ञान' नहीं है। सारी शिक्षा हमारे लिये तभी उपयोगी होगी, जब हमें दिया जानेवाला ज्ञान हमारे भीतर के ज्ञान को उद्बुद्ध (चैतन्य) करके उसे क्रियाशील कर दे। बाहर से प्रदान किया गया ज्ञान यदि हमारे स्वरूप अथवा स्वभाव का सहज और अभिन्न अंश नहीं है, तो वह कुछ समय बाद नष्ट हो जायेगा। बाहर से प्राप्त ज्ञान स्थायी लाभ नहीं देता। गुरु शिष्य में अन्तर्निहित ज्ञान को बाहर प्रकट करते हैं। अत: ज्ञान आत्मा का आन्तरिक लक्षण है।

शिक्षा और संस्कार हमारे भीतर के सहज ज्ञान को प्रस्फुटित कर उसे देखने, अनुभव करने, प्रयोग में लाने, उसका आनन्द लेने और लाभ उठाने में हमारी सहायता करते हैं। शिक्षा या संस्कार से हमारी प्रकृति नहीं बदलती और न ही बदल सकती है, वे केवल उसे अभिव्यक्त कर विकास के लिये पूर्ण अवसर और स्वतंत्रता देते हैं। आद्यशंकराचार्य के अनुसार – **नानाछिद्र घटोदर स्थित महादीप प्रभाभास्वरम्।** – अर्थात् बहुत से छिद्रवाले बर्तन के भीतर रखे हुए विशाल दीपक के प्रकाश के समान हमारा मस्तिष्क है। हमारे मस्तिष्क में ज्ञान के अनन्त तन्तु हैं, परन्तु अधिकांश क्रियाशील नहीं होने के कारण मनुष्य को सीमित ज्ञान ही प्राप्त होता है। अत: हमारी आत्मा अनन्त ज्ञानस्वरूप है।

३. अनन्त आनन्द – उपनिषदों के अनुसार आत्मा सत् (नित्य), चित् (ज्ञान) और आनन्दस्वरूप है, अत: आत्मा अनन्त आनन्दस्वरूप है, परन्तु माया हमारी बुद्धि पर ऐसा आवरण डाल देती है कि हम भ्रमित हो जाते हैं।

दुखी मनुष्य से सभी कारण पूछते हैं, परन्तु सुखी मनुष्य से सुख का कारण नहीं पूछते, क्योंकि दुखी होना हमारा लक्षण नहीं, उपलक्षण मात्र है। स्त्री-पुत्रादि के वियोगादि पर मनुष्य समझता है कि उसके जीवन में सदा के लिये अँधेरा छा गया, परन्तु समय बड़े-बड़े घावों को भर देता है। अत: कुछ समय बाद मनुष्य इन दुखों को भूल जाता है, क्योंकि शोक हमारा वास्तविक लक्षण नहीं, उपलक्षण है तथा आनन्द ही हमारा वास्तविक लक्षण है। दुख के समय भी आनन्द दबा हुआ पड़ा रहता है। अत: दुख नहीं, बल्कि आनन्द हमारा स्वाभाविक लक्षण है। इसके अतिरिक्त हम सब आनन्द की खोज में रहते हैं, अत: आनन्द ही हमारे अन्तरात्मा का स्वभाव है और जितना हम उससे दूर जाते हैं, उतना ही हमारा दु:ख बढ़ जाता है। हम आनन्द प्राप्ति की निरन्तर चेष्टा करते हैं, क्योंकि आनन्द ही हमारा स्वरूप है। हम जो कुछ करते हैं, उसका लक्ष्य आनन्द प्राप्ति का है।

जिस आनन्द की हम खोज करते हैं, वह देश, काल अथवा परिणाम में बद्ध नहीं, अपितु स्वतन्त्र, विशुद्ध और अनन्त है तथा हमारे भीतर स्थित है। अत: अनन्त आनन्द ही आत्मा का स्वरूप है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की द्वितीय वल्ली (ब्रह्मानन्दवल्ली) के अष्टम अनुवाक में आत्मा के आनन्द की मीमांसा की गयी है – 'सर्वप्रथम मनुष्य-लोक के भोगों से मिल सकने वाले बड़े-से-बड़े आनन्द से मानव-गन्धर्वों का इकाई आनन्द सौ गुणा है। इस प्रकार अन्य लोकों के आनन्द से तुलना करते हुए कहा गया है कि हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का आनन्द मानव लोक के आनन्द का १०२० गुणा अधिक है।' अन्त में कहा गया है कि आत्मा के आनन्द की तुलना में हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का आनन्द भी बहुत ही तुच्छ है। अत: आत्मा का आनन्द पूर्णानन्द, नित्यानन्द, अखण्डानन्द और अनन्त आनन्द है। इसी उपनिषद् की भृगुवल्ली के अनुसार महर्षि वरुण के प्रसिद्ध पुत्र भृगु ऋषि ने तप-जप साधना से जाना कि आत्मा आनन्दमय है, क्योंकि इस आनन्दस्वरूप आत्मा से ही सृष्टि होती है, इसी से सब प्राणी जी रहे हैं (कोई भी दु:ख के साथ जीवित नहीं रहना चाहता) तथा प्रलयकाल में समस्त प्राणी आनन्दमय आत्मा में ही विलीन हो जाते हैं।

ब्रह्मसूत्र (वेदान्त-दर्शन) के सूत्र **आनन्दमयोऽभ्यासात्** (१/१/१२) में कहा गया है कि श्रुति में बारम्बार 'आनन्द' शब्द आत्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है, अत: 'आनन्दमय' शब्द आत्मा का ही वाचक है। अत: हमारी आत्मा अनन्त आनन्दस्वरूप है।

४. स्वतन्त्रता – सृष्टि में समस्त प्राणियों की प्रकृति मुक्त से विचरण करने की है। प्राप्त भोगों को यदि हम अपनी इच्छानुसार न भोग सकें, तो यह परावलम्बन ही हमारे लिये भारस्वरूप और असह्य हो जायेगा। कोई भी प्राणी बन्धन में नहीं रहना चाहता। विवशता के कारण बन्धन में रहते हुए सभी प्राणी बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं। प्रत्येक चेतन प्राणी में स्वतंत्रता की उत्कट इच्छा होती है। मनुष्यों के लिये तो दिन में स्वतन्त्रता से चिन्तन करना, रात्रि में स्वप्न देखना और जाने-अनजाने हर समय स्वतन्त्रता की इच्छा करना अधिक स्वाभाविक है। इस प्रकार हमारा स्वतन्त्रता के लिये निरन्तर लालायित रहना, इस बात का प्रमाण है कि बन्धन से मुक्त होना हमारा स्वभाव है। अत: सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होना (मोक्ष) आत्मा का स्वाभाविक लक्षण है।

५. ऐश्वर्य (ईशन) – संसार में प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि दूसरे मनुष्य उसकी इच्छा से संचालित हों और उसकी इच्छा का अनुसरण करें। बच्चे भी यही चाहते हैं कि उनके माता-पिता उनकी इच्छानुसार चलें। यह नियम सर्वथा अपवाद रहित है। प्रत्येक मनुष्य अपने हृदय से वास्तव में केवल जीना, ज्ञान प्राप्त करना, सुखी होना और स्वतन्त्र होना ही नहीं चाहता, अपितु दूसरों पर शासन करने की भी इच्छा करता है। सच तो यह है कि हम केवल शासन या राय ही नहीं चाहते, अपितु सम्भव हो, तो अखिल ब्रह्माण्ड का स्वामित्व चाहते हैं। अत: ऐश्वर्य आत्मा का स्वाभाविक लक्षण है।

इस प्रकार विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सत् (नित्य), चित् (ज्ञान), आनन्द, मोक्ष (स्वतंत्रता) तथा ईशन (शासन करना - ऐश्वर्य) ये पाँचों लक्षण हमारी आत्मा के स्वाभाविक और सहज लक्षण हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण में ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में कोई बात नहीं की गयी, केवल जीव की ही चर्चा हुई है। हम लोग ईश्वर को जानें अथवा न जानें, सत्ता में विश्वास करें या न करें, किन्तु संसार के धर्मग्रन्थों में ईश्वर को सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप, मुक्तस्वरूप और ऐश्वर्यस्वरूप बताया है तथा ये ही लक्षण आत्मा के हैं, जिनका यहाँ वर्णन किया गया है। ○○○

प्रेरक लघुकथा

मोहि कपट छल छिद्र न भावा

शरत चन्द्र पेंढारकर

लाल बहादुर शास्त्री दुबले-पतले और नाटे कद के थे। सद्गुणों के वे आगार थे। सत्यनिष्ठा, कर्मठता और कठोर परिश्रम – ये गुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। उनकी शालीन धर्मपत्नी ललिता देवी उनकी अनुगामिनी थीं। मौसम की कोई भी नई वस्तु बाजार में आती, तो वे उसे खरीदकर पहले शास्त्रीजी को खिलाती थीं।

एक बार अँगेजी सरकार ने अन्य नेताओं के साथ शास्त्रीजी को गिरफ्तार कर उन्हें फैजाबाद के जेल में रखा। एक दिन ललिताजी केशव देव मालवीयजी की पत्नी के साथ जेल में गईं। शास्त्रीजी को आम बहुत पसन्द थे। इसलिये दो आम साड़ी के पल्लू में छिपाकर वे साथ में ले गईं। शास्त्रीजी से भेंट होते ही उन्हें चुपके से वे आम निकालकर देने लगीं। आम देखते ही शास्त्रीजी रुष्ट होकर बोले, ''तुम आमों को छिपाकर लाई हो। यह तो चोरी हुई। तुम कैसे भूल गईं कि झूठ, चोरी, कपट, बेईमानी से मैं कितनी घृणा करता हूँ। स्वार्थ के लिए तुम मेरा विश्वास बिगाड़ने पर तुली हो।'' यह सुनते ही ललिता देवी रोने लगीं। अपने पति से मिलने के बाद मालवीयजी की पत्नी वहाँ आईं और ललिता देवी को रोते और आमों को पल्लू में छिपाते देख घटना उनकी समझ में आ गई। शास्त्रीजी की ओर देखते ही वे उनसे कुछ न बोल सकीं। बीमारी के कारण ललिता देवी को तीन महीने बाद शास्त्रीजी से मिलने का सुयोग मिला था, किन्तु शास्त्रीजी ने उन्हें बोलने का अवसर ही नहीं दिया। मिलने का समय समाप्त होने पर विदा होने का हाथ से संकेत देती हुई वे लौट गईं। उन्हें अपनी गलती का बोध और पश्चात्ताप भी हुआ। किन्तु यह बात उनके हृदय को जीवन भर कचोटती रही कि उन्होंने उस दिन आमों के मोह से उन्हें नाराज कर दिया।

सच्चरित्रता मनुष्य की नैतिक उन्नति का आधार-स्तम्भ है। जो सात्त्विक विचार करते हैं। अपेक्षा भंग होने की वेदना उनके लिए असह्य होती है। चरित्रवान व्यक्ति दूसरों के साथ सरलता, स्नेह, सौजन्य, सत्यपरायणता और सदाशयता का व्यवहार करते हैं। अपने इन गुणों से वे वातावरण में चंदन के समान सुगंध बिखेरते हैं। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२४)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

चुँचुड़ा

मूलाजोड़ से फिर भाटपाड़ा लौटकर मैं श्रीयुत प्रियनाथ तत्त्वरत्न, पंचानन तर्करत्न, कृष्णपद न्यायरत्न आदि पण्डित महाशयों के साथ चुँचुड़ा गया और सर्वप्रथम हुगली कालेज में रसायन के प्राध्यापक, विदेश में शिक्षित श्रीयुत फणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के निवास पर जाकर उनसे मिला। पण्डित महाशयों से मेरा परिचय पाकर वे बोले, "स्वामी विवेकानन्द का धर्म मेरी समझ में नहीं आता, परन्तु उन्होंने पाश्चात्य देशों में जाकर भारत का जो नाम रौशन किया है, इसके लिये प्रत्येक भारतवासी उनके प्रति कृतज्ञ रहेगा।" इसके बाद मैंने भूदेव बाबू के घर जाकर उनके एकमात्र जीवित पुत्र मुकुन्द बाबू से भेंट की। मैं भूदेव बाबू के घर में ही ठहर गया। पण्डित महाशय लोग लौट गये। मेरी भाटापाड़ा में कुछ दिन और बिताने की इच्छा थी, परन्तु वैसा हो नहीं सका। मैंने मुकुन्द बाबू से कहा, "समाचार-पत्रों में आपके वैदिक विद्यालय की बात पढ़कर उसे देखने आया हूँ।" वे बोले, "वैदिक विद्यालय तो नाम मात्र के लिए है। वस्तुत: इसमें कुछ छात्रों को वृत्ति देकर प्रचलित संस्कृत-शिक्षा के ही वेदान्त, दर्शन, न्याय, काव्य आदि शास्त्रों का ही पठन-पाठन होता है।" इतना कहकर उन्होंने मेरा उस विद्यालय के प्रधानाचार्य के साथ परिचय करा दिया। वे पहले वर्धमान-महाराजा के सभा-पण्डित थे। मुकुन्द बाबू ने मुझसे पूछा, "वर्तमान समय में कौन-से पण्डित वैदिक शिक्षा देने के योग्य है?" मैंने कलकत्ता-निवासी पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी का नाम लिया। मुकुन्द बाबू ने तत्काल अपने प्रधानाध्यापक वेदान्तरत्न महाशय के सप्ताह में दो दिन सामश्रमी के पास जाकर वेदाध्ययन करने की व्यवस्था की। वे मुझसे बोले कि यह व्यवस्था मेरी उन लोगों के घर में आने के स्मृतिचिह्न के रूप में बनी रहेगी।

यहाँ पर मैं इस बात का थोड़ा-सा परिचय देना चाहूँगा कि भूदेव बाबू कैसे राष्ट्रीयता के भाव से अनुप्राणित देशप्रेमी थे। स्वदेशी आन्दोलन के काफी पहले से ही उनके घर में स्वदेश में ही बने वस्त्रों आदि का उपयोग होता था। यहाँ तक कि मैंने उनके घर में सबको स्टील के पेन की जगह घर में ही बने टिन और पंख के कलम से लिखते देखा। नवीन ग्रन्थों तथा दवाओं के अतिरिक्त उनके घर में किसी भी विदेशी वस्तु का उपयोग नहीं होता था।

उनकी शिक्षा देने की सुन्दर प्रणाली देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिला था। गोविन्द बाबू तथा मुकुन्द बाबू के अनेक अल्पवयस्क पुत्र थे। प्रतिदिन सुबह उठकर वे लोग पढ़ाई-लिखाई आरम्भ करने के पूर्व एक कतार में खड़े होकर जयदेव गोस्वामी द्वारा रचित 'दशावतार-स्तोत्र' का पाठ किया करते थे। यहाँ एक अन्य बात भी उल्लेखनीय है। उनके बैठकखाने के ही एक किनारे उनके घर के बच्चे एकाग्रचित्त से तन्मय होकर पढ़ना-लिखना किया करते थे। उसी कमरे में बैठकर भूदेव बाबू अपने समकालीन अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों के साथ विविध विषयों पर चर्चाएँ किया करते थे और उस दौरान व्यंग्य-विनोद की बातें भी हुआ करती थीं। परन्तु उनका ऐसा प्रभाव था कि उस समय भी बच्चे पूरा मन लगाकर अध्ययन करते रहते थे।

उन दिनों मुकुन्द बाबू काफी काल तक अपनी 'एजूकेशनल गजट' नामक पत्रिका मठ में भेजा करते थे।

नैहाटी

मेरे भूदेव बाबू के घर में निवास के दौरान ही जयपुर महाराजा कॉलेज के भौतिक-विज्ञान के प्राध्यापक मेघनाथ भट्टाचार्य महाशय आ पहुँचे। जयपुर में उनके साथ मेरा विशेष परिचय हुआ था। वे कुछ दिनों की छुट्टी लेकर गाँव आये हुए थे। मुझे देखते ही वे मुझे अपने नैहाटी के घर ले गये। ये पण्डित हरप्रसाद शास्त्री के छोटे भाई थे। शास्त्री महाशय वहीं एक अलग मकान में सपरिवार निवास करते थे।

मैं मेघनाथ बाबू के साथ करीब आठ-दस दिन रहा। शास्त्रीजी के साथ इतिहास पर चर्चा करते हुए मेरे दिन बड़े आनन्द में बीतते। मेरे साथ बातें करके वे बड़े सन्तुष्ट हुए थे।

यहीं पर एशियाटिक सोसाइटी के एक ब्राह्मण विद्वान् शास्त्रीजी के निर्देशानुसार 'बंगाल में धर्मठाकुर' के विषय में सामग्री एकत्र किया करते थे। शास्त्रीजी का विश्वास था कि बौद्ध लोगों के 'बुद्ध, धम्म तथा संघ' के 'धम्म' की अब भी बंगाल की निम्न जातियों के बीच धर्मठाकुर के नाम से उपासना होती है। अत: अब भी बंगाल से बौद्ध धर्म का पूरी तौर से उन्मूलन नहीं हुआ है।

धर्मठाकुर का इतिहास संग्रह करनेवाले इन पण्डित ने ही एक बार मुर्शिदाबाद के एक गाँव में क्रुद्ध किसानों के डण्डों की मार से अद्भुत रूप से मेरी प्राणरक्षा की थी।[१२]

शास्त्रीजी के घर में ही मेरा काशी के पण्डित शिवकुमार शास्त्री के शिष्य पण्डित बहुवल्लभ शास्त्री के साथ परिचय हुआ। वे प्रतिदिन सुबह कलकत्ते से नैहाटी आते थे। हरप्रसाद शास्त्री महाशय उनसे पाणिनि का व्याकरण पढ़ा करते थे। बहुवल्लभ शास्त्री को महाभाष्य का विशेष ज्ञान था। एक दिन उनके मुख से महाभाष्य की व्याख्या सुनकर मैं उनके पाण्डित्य पर मुग्ध हो गया था। इतने दुरूह शास्त्र की व्याख्या मुझे अति प्रांजल रूपकथा के समान प्रतीत हुई थी। मेरे मन में उनके मुख से पूरे महाभाष्य की व्याख्या सुनने की इच्छा हुई थी। परन्तु व्यवहार्यत: वह सम्भव नहीं हो सका।

स्वामीजी कहा करते थे, ''पाणिनि के सूत्रों को कण्ठस्थ करके महाभाष्य के किसी विद्वान् से उसकी व्याख्या सुन लेने पर 'सिद्धान्त-कौमुदी', 'मनोरमा' तथा 'सरला' के समान व्याकरण विषयक ग्रन्थ लिख पाना सम्भव हो सकता है।'' हरप्रसाद शास्त्री महाशय ने हमारे मठ के ग्रन्थालय के लिये 'परिमल' आदि कई प्रकरण-ग्रन्थ उपहार में दिये थे। उन दिनों वे प्रेसीडेंसी कॉलेज में संस्कृत के प्राध्यापक थे।

नैहाटी से मैं मठ लौट आया।

उन दिनों गर्मी का मौसम था। एक दिन स्वामी शिवानन्द, तुरीयानन्द तथा मैं आलमबाजार के लोचन घोष के घाट पर गंगास्नान करके मठ लौट रहे थे। आलमबाजार के चौमुहाने पर हम लोगों ने एक वृद्धा को अचेत पड़ी हुई देखा। उस समय दक्षिणेश्वर तथा एँड़ेदह अंचल में हैजे का प्रकोप फैला हुआ था। उस वृद्धा को भी हैजा हुआ था। किसी को पता नहीं था कि वह कहाँ से आकर वहाँ सड़क पर पड़ी हुई थी। मैंने एक स्वच्छ वस्त्र लाकर उस वृद्धा को पहनाया और तत्काल उसे एक बैलगाड़ी में ले जाकर उसे वराहनगर थाने में पहुँचा आया। जब थानेवालों ने उसे कैम्पबेल अस्पताल भिजवा दिया, तो मैं मठ लौट आया। ऊपर जाते ही दरवाजे पर स्वामी शिवानन्द खड़े दिखाई दिये। वे मुझे देखते ही बोले, "You must be fumigated first." (पहले तुम्हें धोकर जीवाणुमुक्त करने की जरूरत है) और उन्होंने मुझसे तत्काल कपड़े उतारने को कहा। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही मैं खड़दह गया। ***(क्रमश:)***

श्रीमाँ सारदा देवी का पत्र

(श्रीमती कमला सेनगुप्त को लिखित)

स्नेहमयी बेटी कमला,

बेटी, देवघर में तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ था, परन्तु आते समय कई प्रकार के झमेलों के कारण देवघर से पत्र नहीं दे पाई। इसीलिए पत्र देने में देरी हुई। देवघर जाने से मेरा स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी हुई है। पिछले शनिवार मैं यहाँ आई हूँ। पुस्तक को और भी कुछ बार पढ़कर देखो। एक-दो बार पढ़कर कुछ भी नहीं समझ पाओगी। जब मन अच्छा रहेगा, तो पढ़ना, तब बहुत ही अच्छा लगेगा। अस्वस्थ मन से पढ़ने से जरा भी अच्छा नहीं लगेगा। यदि हो सके, तो कुछ धार्मिक अच्छी-अच्छी पुस्तकें हमेशा अपने पास रखना। समय मिलने पर इन पुस्तकों को पढ़ना और सदा ही भगवान के रूप का ध्यान एवं जप करना। भगवान का जो रूप तुम्हें अच्छा लगे, उसी रूप का ध्यान करना। सदा साधुसंग नहीं हो पाता, इसलिए साधुओं की जीवनियाँ पढ़ना। इससे मन पवित्र और निर्मल होता है। आलस्य में समय नहीं बिताना, इससे शरीर और मन दोनों ही खराब हो जाते हैं। हाथ से कार्य करो और मन-ही-मन भगवान का नाम जप करो। जप करने की इच्छा नहीं होने पर भी जबरदस्ती जप करना। इससे मन बहुत कुछ पवित्र होगा। अवश्य ही होगा, कोई चिन्ता नहीं है, केवल भगवान को पुकारो। वे दयामय एवं स्नेहमय हैं, उनको मन-प्राण से पुकारने पर अवश्य ही उनकी कृपा होगी। कोई डर नहीं है, केवल उनको पुकारो। मन का पवित्र और निर्मल होना तो छोटी बात है, तब तुम देखोगी कि उनकी कितनी दया है! तुम कैसी हो, लिखना। मेरा स्नेहभरा आशीर्वाद ग्रहण करना। बीच-बीच में पत्र देना नहीं भूलना।

तुम्हारी मंगलाकांक्षी
माँ

महाराणा प्रताप को प्रेरित करने वाली बालिका

स्वामी पद्माक्षानन्द

यह उन दिनों की बात है, जब महाराजा महाराणा प्रताप सिंह अपने राज्य चितौड़ से दूर एक बीहड़ जंगल में रहते थे। उनके साथ पत्नी और बाल-बच्चे थे। मेवाड़ के सम्राट और उनके बाल-बच्चे अपना जीवन घास की रोटियाँ और जंगली बेर खाकर व्यतीत करते। यह खाना भी उनको प्रतिदिन नहीं मिलता था।

महाराणा प्रताप की चम्पा नाम की एक पुत्री थी। वह ग्यारह वर्ष की थी। एक दिन सन्ध्या के समय वह अपने छोटे भाई सुन्दर के साथ जंगल की एक छोटी-सी नदी के किनारे बैठी हुई थी। चार साल का सुन्दर पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़ों को नदी में फेंक-फेंक कर खेल रहा था। चम्पा अपने भाई का मन बहलाने के लिये जंगली फूलों की एक माला गूँथ रही थी।

कुछ देर बाद सुन्दर ने कहा – 'जीजी! मुझे जोरों की भूख लगी है, कुछ खाने को दो।' किन्तु चम्पा के पास वहाँ खाने के लिए क्या रखा था, जो सुन्दर को देती। उसका ध्यान खाने से हटाने के लिये चम्पा ने कहा – 'एक कहानी सुनो, मेरे भाई!'

सुन्दर – हाँ, हाँ, सुनाओ जीजी।

चम्पा – एक राजा था। वह अपना राज्य हार गया और जंगल में रहने लगा। एक दिन वह थका-माँदा और भूखा खाने के लिए बैठा ही था कि एक कौआ आकर उसकी रोटी छीनकर ले गया।

सुन्दर – तब तो वह राजा रोया होगा।

चम्पा ने उत्तर दिया – ना, वह कोई तुझ-जैसा पागल थोड़े ही था, जो रोटी के लिये रोता।

सुन्दर ने कहा – तो, मैं भी कब रोया?

चम्पा ने अपने भाई को गोद में उठाते हुए कहा – मेरा भैया तो चतुर, बहादुर है, वह क्यो रोये?

चम्पा ने गुँथी हुई माला सुन्दर के गले में पहना दी और उसे गोदी में उठाये अपने पिताजी के पास आयी। भूख के कारण स्वयं चम्पा को चक्कर आ रहा था। उसने आकर देखा कि पिताजी किसी चिन्ता में हैं। उनकी उदास आँखें आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रही हैं।

चम्पा ने पूछा – क्या बात है, पिताजी!

महाराणा – कुछ नहीं, बेटी! एक अतिथि आ गये हैं, वह भोजन की आशा में बैठे हुए हैं किन्तु उन्हें क्या पता कि महाराणा का परिवार आज स्वयं दो दिन से भूखा है।

'नहीं, पिताजी! आप चिन्ता न कीजिये। आपके द्वार से अतिथि भूखा वापस नहीं लौटेगा।' महाराणा के नेत्र चमक उठे। उन्होंने देखा कि चम्पा एक पत्थर के नीचे से दो छोटी-छोटी रोटियाँ निकालकर ला रही है।

चम्पा – पिताजी! आपने जो मुझे कल ये रोटियाँ दी थीं न, मुझे भूख नहीं लगी थी। इसलिये मैंने उसे सुन्दर के लिये रख दिया था। सुन्दर तो इस समय सो रहा है। अत: ये रोटियाँ आप अतिथि को दे दीजिये।

महाराणा जानते थे कि उनकी फूल-सी बच्ची ने अपना पेट काटकर ये रोटियाँ बचाकर रखी है। किन्तु परिस्थितिवश वे चुप रहे। उन्होंने वही दो रोटियाँ चटनी के साथ अतिथि को को खाने को दिया। अतिथि तृप्त होकर चले गये।

महाराणा ने आकर देखा कि चम्पा मूर्च्छित हो चुकी है। वह भूख के कारण दम तोड़ रही है। उन्होंने कहा – ''महारानी! मैं सब कुछ सहन कर सकता हूँ, किन्तु भूख के कारण अपनी सन्तान को मरते हुए नहीं देख सकता।''

राणा जीवन में शायद पहली बार अधीर तथा बेचैन हो उठे। उनके मुँह से बरबस निकल पड़ा – 'मैं, अब अकबर की अधीनता स्वीकार कर लूँगा।'

राणा के मुख से ये शब्द निकले ही थे कि चम्पा ने अपनी आँखें खोली और बोली – ''क्या कहा पिताजी! आप अकबर की अधीनता स्वीकार करेंगे – हमें मरने से बचाने के लिये? किन्तु पिताजी! क्या हम फिर कभी भी नहीं मरेंगे? क्या हम सदा के लिये अमर हो जायेंगे? नहीं-नहीं पिताजी! ऐसा कभी भी नहीं सोचिएगा क्योंकि अकबर का गुलाम बनकर तो हम जीते-जी ही मर जायेंगे।''

महाराणा – सच कहती हो बेटी!

चम्पा – तो पिताजी मेरे सिर पर हाथ रखकर कसम खाइये कि 'मैं फिर कभी ऐसा विचार अपने मन में नहीं लाउँगा'।

शेष भाग पृष्ठ ६१४ पर

जगज्जननी जानकी

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनके व्याख्यान को सम्पादित कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की संस्कृत विभाग की प्रध्यापिका डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है। – सं.)

(गतांक से आगे)

सीस जटा, उर बाहु बिसाल
बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौंहैं।
तून सरासन-बान धरें
तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं।।
सादर बारहिं बार सुभायँ
चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछत ग्रामबधू सिय सों,
कहौ, साँवरे-से सखि! रावरे को हैं।।

कवितावली २/२१

सीताजी से गाँव की स्त्रियाँ पूछती हैं – जिनके सिर पर जटाएँ हैं, विशाल वक्षस्थल और लम्बी भुजाएँ हैं, अरुणवर्ण नेत्र हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुषबाण और तरकस धारण किये हुए वन के इस मार्ग में बड़े भले लग रहे हैं और स्वभाव से ही तुम्हारी ओर जिनका बार-बार आदरपूर्वक देखना हमारा मन मोह ले रहा है बताओ तो हे सखि! वे साँवले-से कुँवर आपके कौन होते हैं?'

सीताजी, श्रीराम उन्हें बार-बार देख रहे हैं, यह सुनकर गद्गद् भी होती हैं और संकुचित भी, वे दृष्टि नीची किये बैठी हैं। ग्रामवधुओं के कौतूहल-भरे इस प्रश्न के उत्तर में वे पहले लक्ष्मणजी का परिचय देती हैं –

'सहज सुभाय सुभग तन गोरे।
नाम लखनु लघु देवर मोरे।। २/११६/५

सरल स्वभाव के सुन्दर-से गौरवर्ण वाले कुँवर मेरे छोटे देवर हैं, और उनका नाम लक्ष्मण है। इसके बाद श्रीराम का परिचय देने की बारी आती है, तो वे कह सकतीं थीं कि श्यामवर्ण के जो राजकुमार हैं वे उनके बड़े भाई हैं। परिचय स्पष्ट हो जाता, पर वे बोलकर श्रीराम का परिचय नहीं देतीं। वे मुख पर घूँघट डालकर तिरछी दृष्टि से श्रीराम की ओर देखती हुई संकेत से उन्हें अपना पति बतलाती हैं—

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि। २/११६/६-७

परिचय देने की इस लुभावनी रीति पर ग्रामवधूटियाँ निछावर हो जाती हैं। श्रीराम का परिचय तो वे जानती ही हैं, सच में तो वे सीताजी का श्रीराम की ओर निहारना देखना चाहती थीं। शक्ति ही ब्रह्म का परिचय करा सकती है, किन्तु परिचय देने का यह ढंग अनूठा है। सीताजी घूँघट डाल लेती हैं, यह घूँघट उनके और श्रीराम के बीच आवरण या पर्दे का काम करता है। आवरण से वस्तु ढँक जाती है, परिचय के लिये तो आवरण दूर करना चाहिये था, पर सीताजी आवरण की सृष्टि कर रही हैं। इसका कारण है, ये ग्रामवधूटियाँ ज्ञानमार्ग की पथिक नहीं हैं, ये तो सीता और राम को प्रेम और अनुराग की दृष्टि से देखती हैं, ये भक्त हैं। भक्ति द्वैत की, भेद की अपेक्षा रखती है; द्वैत के बिना उपास्य और उपासक, ईश्वर और जीव, प्रेमी और प्रेमास्पद का सम्बन्ध नहीं बनता। सीताजी भगवान की मायाशक्ति हैं, माया का कार्य ही है आवरण की सृष्टि करना, भेद की सृष्टि करना। ज्ञानी और भक्त की दृष्टि में अन्तर होता है, ज्ञानी आवरण उतरवाना चाहता है, कबीरदास कहते हैं, 'घूँघट के पट खोल रे, तोहे राम मिलेंगे'। भक्त आवरण स्वीकार करता है, वह तो भावनाओं के आवरण में कुछ छिपते और कुछ झलकते अपने प्रियतम को अपने मनोनुकूल रूप में देखना चाहता है। गोस्वामीजी कहते हैं, **'मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावे'**– नाते तो दो के बीच ही बनते हैं, अखण्ड अद्वैत में 'नाते' कहाँ? अत: भक्ति-रस के पोषण के लिये सीताजी आवरण के पीछे से श्रीराम को देखती हैं और बोलकर नहीं, संकेत से परिचय देती हैं। परमात्मा वाणी का विषय नहीं है, अत: उसका परिचय संकेत से ही दिया जा सकता है।

वस्तुत: तो शक्ति ही ब्रह्म पर आवरण डालकर द्वैत की सृष्टि करती है, नहीं तो 'निर्गुण-निराकार-एकरस' ब्रह्म के द्वारा सृष्टि की रचना सम्भव नहीं है, न ही उसका 'अवतार' और 'लीला' सम्भव है। ब्रह्म 'शान्त' है, उसमें क्रिया नहीं

है। क्रिया क्यों नहीं है? इसका उत्तर देते हैं गोस्वामीजी –

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ।।१/५०/०

ब्रह्म 'अनीह' है, उसमें शक्ति तो है, पर 'इच्छा' नहीं है। इच्छा के बिना क्रिया सम्भव नहीं है। इच्छा इसलिये नहीं है क्योंकि वह 'पूर्णकाम' है। शक्ति का कार्य है सृष्टि के विस्तार के लिये, 'लीला' के लिये उस 'अकाम' परतत्त्व को 'सकाम' बनाना, 'विरागी' को 'अनुरागी' बनाना। सीताजी श्रीराम को 'अनुरागी' बनाती हैं, जनकजी की पुष्पवाटिका में सीताजी के आभूषणों की ध्वनि से 'पूर्णकाम' में 'कामना' की सृष्टि होती है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।। १/२२९/१
सुंदरता कहुँ सुंदर करई।
छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।। १/२२९/७
तात जनकतनया यह सोई।
धनुषजग्य जेहि कारन होई।। १/२३०/१
करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान।।
१/२३१/०

लक्ष्मणजी श्रीराम में इसी 'राग' का उदय चाहते थे। यदि श्रीराम के हृदय में इस राग का उदय न होता तो धनुर्भंग भी न होता, न ही आगे उनकी 'नरलीला' का विस्तार हो पाता। सीताजी जनकपुरी में उद्भवरूपा, अयोध्या में स्थितिरूपा और लंका में संहाररूपा हैं, पर यह सब तभी होगा, जब उनके आश्रयभूत परमात्मा में काम, करुणा और क्रोध उत्पन्न होगा। अन्यथा किसी संकल्प के अभाव में शक्ति निष्काम और निर्विकार ब्रह्म को क्रियाशील नहीं बना पायेगी, क्योंकि 'कामना' या 'संकल्प' के बिना कोई चेष्टा या क्रिया सम्भव ही नहीं है। अत: ब्रह्म का 'सकाम' बनना आवश्यक है। श्रीराम कहते हैं—

'जासु बिलोकि अलौकिक सोभा, सहज पुनीत मोर मन छोभा'– यह 'क्षोभ' ही 'लीला' की प्रेरणा है।

जीव यदि ब्रह्म को अपनी ओर उन्मुख करना चाहता है तो आवश्यक है कि वह उसकी करुणा को आकृष्ट कर सके जिससे कि उसके कल्याण की दिशा में उसका विनियोजन हो सके, पर जीव में इतनी शक्ति कहाँ? इसलिये वह आद्याशक्ति पराभक्तिरूपा सीताजी से विनती करता है कि 'माँ, तुम अपनी सामर्थ्य से ईश्वर की करुणामयी दृष्टि को मुझ अकिंचन, असमर्थ की ओर प्रेरित करो।' भक्तिस्वरूपिणी सीताजी भक्तों का परम आश्रय हैं, उनके ही आशीर्वाद से हनुमानजी 'अजर अमर सर्वगुणनिधान और श्रीराम के परम प्रिय' बन सके हैं; उनका आशीर्वाद अमोघ है—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।
बार बार नाएसि पद सीसा।
बोला बचन जोरि कर कीसा।।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।
आसिष तव अमोघ बिख्याता।। ५/१६/३-६

'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी ने बड़े दीन स्वर में जानकीजी से प्रार्थना की है कि 'माँ, कभी अवसर मिले, तो श्रीरामचन्द्रजी को मेरी याद दिला देना। कहना कि मैं उनका दास कहलाता हूँ, उनका ही नाम लेता हूँ और पपीहे की तरह उनके स्वाति-जलरूपी प्रेमरस के पान का हठ किये बैठा हूँ। आप तो जानती हैं, प्रभु बड़े सरल स्वभाव के हैं, उन्हें न अपने गुण याद रहते हैं, न दास के अपराध। जिसका कहीं मान नहीं होता, उसे वह मान देते हैं, पर वह भी भूल जाते हैं। माँ, तुम उनसे कहना कि तुलसीदास को न भूलिये, क्योंकि उसका दूसरा कोई ठौर नहीं है'—

'कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं,
किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पान की।।
सरल कहाई प्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ,
दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दान की।।
बानि बिसारनसील है, मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिये,
मन करम बचन जाके, सपनेहुँ गति न आन की।।

विनयपत्रिका ४२

(समाप्त) ○○○

महामना पं. मदनमोहन मालवीय के जीवन के चार सूत्र

प्रो. बालकृष्ण कुमावत, उज्जैन

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पं. मदनमोहन मालवीय का जीवन-दर्शन न केवल सराहनीय है, अपितु स्तुत्य भी है। उनके जीवन दर्शन के चार सूत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं –

१. आस्तिकता : पं. मदनमोहन मालवीय की ईश्वर तथा शास्त्रों में अटूट श्रद्धा थी, विश्वास था एवं आस्था थी। वे सात्विक जीवन के प्रबल अनुयायी थे। भगवान विश्वनाथ की उन पर असीम कृपा थी। यद्यपि दर्शन उनका विषय नहीं था, किन्तु उनका दार्शनिक चिन्तन अद्वितीय था। एक बार विश्वविद्यालय में आयोजित 'ऑल इंडिया फिलॉसाफिकल कांग्रेस' में आये दार्शनिकों के समक्ष ईश्वर-सिद्धि पर उन्होंने अपना व्याख्यान दिया, तो उसे सुनकर जीवनभर दर्शन का अनुशीलन करनेवाले सारे तत्त्ववेत्ता विद्वान अभिभूत हो गये और महामना की विलक्षण दार्शनिक युक्तियों से ऐसे प्रभावित हो गये, मानो वे प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री का ही व्याख्यान सुन रहे हैं। वे भागवत के मर्मज्ञ निष्णात विद्वान और व्याख्याता थे। उन्होंने भागवत के आधार पर ईश्वर के विषय में इतने अकाट्य प्रमाण प्रबल युक्ति से तथा बोधगम्य भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किये कि श्रोतागण अचम्भित रह गये। व्यावहारिक जीवन में महामना की आस्तिकता परिपूर्ण थी। ईश्वर में असीम श्रद्धा रखना उनके जीवन का परम लक्ष्य था।

पं. मदनमोहन मालवीय

२. कर्तव्यपरायणता : महामना पं. मदनमोहन मालवीय की कर्तव्यपरायणता अद्वितीय थी। जिस कार्य का निष्पादन उनके लिये अनिवार्य होता था, उसमें वे इतने मनोयोग से संलग्न हो जाते थे कि सफलता एक दासी की भाँति उनके पीछे-पीछे अनुगमन करती थी। यह ईश्वर-कृपा का ही फल था। श्रीरामचरितमानस में गोस्वामीजी ने लिखा है कि सरस्वतीजी कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्रीरामजी (सूत पकड़कर कठपुतली को नचानेवाले) सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदय-आँगन में सरस्वती को वे नचाया करते हैं।

सारद दारुनारि समस्वामी।
रामु सूत्रधर अंतरजामी।।
जेहि पर कृपा करहिं जनुजानी।
कबि उर अजिर नचावहिं बानी।। १/१०

महामना की यह विशेषता थी कि वे जो भी कार्य प्रारम्भ करते, वे समान अविश्रान्तनिष्ठा से उन कार्यों को सम्पन्न करते थे। प्रत्येक कार्य को वे ईश्वर का कार्य समझकर ही करते थे। यही कारण है कि उनको सिद्धि निस्संदेह मिलती थी। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है –

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता १८/४६)

इस सम्बन्ध में एक रोचक प्रसंग उल्लेखनीय है। एक बार जब मालवीयजी ने विश्वविद्यालय की स्थापना का त्रिवेणी के पावन तट पर संकल्प कर लिया, तब उनकी उपासना का, अनुष्ठान का बस यही एक मात्र विषय था। लोगों ने उनका उपहास किया, उनकी योजना को 'ख्याली पुलाव' नाम देकर तिरस्कृत वस्तु की श्रेणी में रख दिया। किन्तु महामना के चित्त पर इन आलोचनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने अभीष्ट कार्य में निष्ठापूर्वक लग गये। परिणामस्वरूप, 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना हो गई। गर्मी के दिनों में मालवीयजी प्राय: नैनीताल जाया करते थे। एक बार, प्रयाग के गणमान्य वकीलों की मण्डली के साथ वे नैनीताल पहुँचे। इस मण्डली में सर सुन्दरलाल, मुंशी ईश्वरशरण आदि प्रसिद्ध वकील शामिल थे। विश्वविद्यालय की चर्चा उस समय जोरों पर थी, परन्तु लोग प्राय: उसे कोरी कल्पना से अधिक महत्त्व नहीं देते थे। हँसी-मज़ाक में ही एक शाम को

सर सुन्दरलाल पूछ बैठे – Well, Malviyajee, when is your toy university coming into being? अर्थात् आपकी गुड़िया विश्वविद्यालय कब जन्म ले रही है? कर्तव्यनिष्ठ महामना ने तुरन्त उत्तर दिया - to come into being in no distant future and you, Sir Sunderlal ji will be its first Vice Chancellor अर्थात् मेरा विश्वविद्यालय नातिदूर भविष्य में उत्पन्न होगा और सर सुन्दरलाल जी, आप ही इसके प्रथम कुलपति होंगे। महामना की इस कर्तव्यनिष्ठा पर, सहज-सलोने उत्तर पर, वह विद्वन्मण्डली चमत्कृत हो उठी और सचमुच महामना की बात शीघ्र ही चरितार्थ हुई। सर सुन्दरलाल इसके प्रशंसक सूत्रधार बने तथा इसके प्रथम कुलपति भी। महामना की वाणी अमोघ सिद्ध हुई।

३. उत्साह : महामना पं. मदनमोहन मालवीय के जीवन-दर्शन का तीसरा सूत्र था उत्साह। वे अदम्य उत्साह की प्रतिमूर्ति थे। 'विषाद' शब्द मालवीयजी के कोष में कहीं भी विद्यमान नहीं है। वे कभी विषाद को जानते ही नहीं थे। एक बार दीर्घरोग से क्षीणकाय होने पर मालवीयजी ने जो बात पंडितों से कही थी, वह प्रत्येक व्यक्ति को सदैव स्मरण रहनी चाहिए – ''आज मेरा शरीर इस रोग के कारण अवश्य ही क्षीण एवं दुर्बल हो गया है, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं पूर्णत: स्वस्थ हो जाऊँगा।''

महामना कहा करते थे कि जब तक असफलता मनुष्य की छाती पर बैठकर उसका गला न घोंटे, जब तक आशा की एक फीकी किरण भी दूरस्थ क्षितिज पर दिख पड़े, तब तक मनुष्य को निराश नहीं होना चाहिए, प्रत्युत परिपूर्ण उत्साह के साथ काम में डट जाना चाहिए। विश्वास रखें, यह कार्य सिद्ध होकर ही रहेगा। वे निराशा कभी जानते ही नहीं थे। कार्य के सम्पादन में व्यथा उन्हें कभी पीड़ा नहीं पहुँचाती थी। वे सोच ही नहीं सकते थे कि यदि कार्य विधिवत् किया जाय, तो वह किस प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता।

४. आत्मविश्वास : आत्मविश्वास महामना में कूट-कूटकर भरा हुआ था। अपने स्वयं के ऊपर, अपनी शक्तियों के ऊपर उनका पूरा-पूरा विश्वास था। श्रीमद्भगवद्गीता का निम्नलिखित श्लोक उनका सर्वप्रिय श्लोक था, जिसमें कहा गया है कि मनुष्य अपने द्वारा अपने संसार-समुद्र का उद्धार स्वयं करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। गीता ६/५

महामना आत्मविश्वास की जीवन्त मूर्ति थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सिद्धि में उनके इस मंत्र ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे अपने साध्य की पवित्रता में पूर्ण विश्वास करते थे। इसी के सहारे उन्होंने विषम-से-विषम परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की।

उल्लेखनीय है कि उक्त विश्वविद्यालय की स्थापना के अवसर पर महात्मा गाँधी को महामना ने इसी सद्गुण के कारण लोगों की दृष्टि में सम्मानित किया था। महामना पं. मदनमोहन मालवीय पूर्णत: एक सात्त्विक कर्ता थे। इतने बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन किया,परन्तु उनके मन में उसका न हर्ष था और न गर्व। वे राष्ट्र के मंगल के निमित्त इस कार्य में परम श्रद्धा से, अदम्य उत्साह से, कर्तव्यबुद्धि से लगे रहे और जो किया, वह सचमुच विलक्षण था।

श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक में वर्णित एक सात्त्विक कर्ता की समस्त विशेषताएँ उनमें विद्यमान थीं, जिसमें इस बात को रेखांकित किया गया है कि जो कर्ता संगरहित, अहंकार के वचन न बोलनेवाला, धैर्य एवं उत्साह-युक्त और कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित है, वह सात्त्विक कहा जाता है -

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।
गीता १८/२६

महामना पं. मदनमोहन मालवीयजी में हृदय ही हृदय था। विपन्न के साथ पूरी सहानुभूति तथा अनुराग उनके जीवन में पग-पग पर दिखाई देता है। उनके जीवन-दर्शन के उत्तम चार सूत्र संक्षेप में उनके गुणों का वर्णन है। उनके गुणों का विस्तृत वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। उनके कृतित्व-व्यक्तित्व का अध्ययन-अनुशीलन कर उनके गुणों से परिचित होकर स्वयं को लोकहित के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इन चार सूत्रों पर रचित निम्न श्लोक उनके जीवन-दर्शन को, उनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व को सदैव प्रकाशित करता रहेगा और 'मनुष्याणां सहस्रेषु' की स्मृति कराता रहेगा।

आस्तिक्यं चात्मविश्वासो ह्युत्साहः कार्यनिष्ठता।
चतुःसूत्री समाख्याता मालवीय महात्मनः।। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४८)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! व्याकुलता की तीव्रता कैसे बढ़ायी जाय?

महाराज – कैसे बढ़ायी जाय! वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट न होकर। सदा मन में एक अशान्ति जाग्रत रखना है। स्वामीजी कहते थे – यह असन्तोष सौभाग्य से होता है, यही चाहिए। बाईबिल में है – एक व्यक्ति जाकर यीशु से कहता है – जो-जो करणीय और पालन करने योग्य है, मैं सब कुछ कर रहा हूँ, दान, उपवास सभी करता हूँ, किन्तु शान्ति नहीं मिल रही है। यीशु ने कहा – यदि तुम सब कुछ करके भी शान्ति नहीं पा रहे हो, तो सब कुछ त्यागकर मेरा अनुसरण करो। लेकिन वह व्यक्ति वैसा नहीं कर सका।

– महाराज! हम लोगों के जीवन में भी तो वैसा ही लग रहा है। सब कुछ मानो दिनचर्या जैसे कर रहे हैं।

महाराज – यही तो आलस्य है, जितनी तीव्रता की आवश्यकता है, जितने उत्साह की आवश्यकता है, उतना नहीं हो रहा है। सब कर रहे हैं, यह एक अहंकार है।

– ठीक कह रहे हैं महाराज! बीच-बीच में लगता है मानो मन ऊपर उठ गया है और कुछ दिन बाद जैसे का तैसा! एक प्रकार की आलस्यता आती है।

महाराज – इसका कारण यह है कि जितनी तीव्रता चाहिए, उतनी नहीं है।

– महाराज! हमारा कुछ हो नहीं रहा है, यह भाव भी ठीक नहीं है।

महाराज – यह एक विलासिता है। जिस दिन वर्तमान अवस्था का असह्य बोध होगा, उसी दिन वर्तमान अवस्था को बदलने के लिए लग जाओगे। ठाकुर कहते हैं न कि उत्साह चाहिए!

– महाराज। आपने जो दुष्प्राप्य असन्तोष की बात कही है, क्या वह साधुओं के आध्यात्मिक विषय में है?

महाराज – निश्चय ही, उनके आध्यात्मिक विषय में है। नहीं तो, क्या अच्छे भोजन-वस्त्र के लिए असन्तोष की बात है? यह स्थान ठीक नहीं है, यह भोजन ठीक नहीं है, यह वस्त्र ठीक नहीं है, ऐसा असन्तोष नहीं। कोई कहीं से आता है, तो पूछता हूँ – क्यों चला आया? वह कहता है – वहाँ का हवा-पानी ठीक नहीं है। गुजराती में कहते हैं – 'हवा-पानी मूफल नहि'। अरे! क्या हवा-पानी को मैं परिवर्तित कर सकूँगा?

प्रश्न – महाराज! कर्म और ध्यान में कैसे समन्वय किया जाय?

महाराज – इच्छाशक्ति बढ़ा-बढ़ाकर किया जाता है। अभ्यास करते-करते इच्छाशक्ति बढ़ती है। केवल बड़ी-बड़ी कल्पना करने से नहीं होगा, उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। कुछ करोगे नहीं, तो केवल प्रतिज्ञा या संकल्प अच्छा करने से नहीं होगा। अनुशीलन करना होगा।

प्रश्न – महाराज! पुरुषार्थ और कृपा के सम्बन्ध में कुछ कहिए। इनमें से क्या चाहिए?

महाराज – दोनों चाहिए। किन्तु कृपा से ही सब कुछ होगा। इसका अर्थ कि मैं कुछ नहीं करूँगा? क्या हाथ-पैर मोड़कर बैठे रहूँगा? नहीं, अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगानी होगी। सम्पूर्ण शक्ति के बाद बोध होगा, मैं अब नहीं कर पा रहा हूँ। तब शरणागति आएगी। शरणागति आने पर उनकी कृपा हो सकती है। हो सकता है, कह रहा हूँ, क्योंकि उनकी कृपा शर्तहीन है। इतना कर रहा हूँ, इसलिए वे कृपा करेंगे, ऐसा नहीं है। क्या चाहिए – पंख की पीड़ा होनी चाहिए। साधन - भजन माने पंख की पीड़ा होना। पंख की पीड़ा होने से पक्षी मस्तूल पर बैठता है। साधन-भजन इसलिए करना है कि साधन का अभिमान इससे चूर्ण होता है। साधन-भजन का अभिमान प्राणघातक होता है। इतना जप करने से भी नहीं होगा, इतना ध्यान करने से भी नहीं होगा। शास्त्र कहते हैं न – **न मेधया न बहुना श्रुतेन –** मेधा के द्वारा उन्हें नहीं पाया जा सकता। **न बहुना श्रुतेन –** हजार बार सुनने पर भी नहीं होगा। तब कैसे होगा? **यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः –** वे जिनको वरण करते हैं, वही प्राप्त करता है।

– महाराज! **'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'** – इसके दो अर्थ हैं, हम लोग कौन-सा ग्रहण करेंगे?

महाराज - हमलोग दोनों ग्रहण करेंगे। ठाकुर ने दोनों को सत्य कहा है। यही हुआ ठाकुर के जीवन आलोक में शास्त्र का अर्थ ग्रहण करना। 'बहुना श्रुतेन' बहुत सुनने पर भी नहीं होगा। क्यों नहीं होगा? क्योंकि ऐसा कहा गया है

शेष भाग पृष्ठ ६१३ पर

मध्यम मार्ग : सन्तुलित जीवन का सुदृढ़ आधार

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमारा यह अनमोल जीवन केवल खाने-पीने और मौज-मजा करने के लिये नहीं मिला है। इतने अनमोल जीवन को पशु के समान नहीं गँवाना चाहिए। हमेशा यह सोचना चाहिए कि भगवान ने हमें मनुष्य जन्म दिया है, इसका कुछ-न-कुछ उद्देश्य है। खा-पीकर जीवन-यापन तो पशु भी करते हैं, लेकिन मनुष्य में धर्म की विशेषता है। वह धर्म के साथ जीता है। इसलिये हमें धर्म के अनुसार जीवन-यापन करना है। धर्म और अध्यात्म हमारे जीवन के प्रधान अंग हैं। हमें यह बात भले ही अभी समझ में न आए, लेकिन वास्तविकता यही है। अत: धर्म और अध्यात्म हमारे जीवन का अभिन्न अपरिहार्य अंग होना चाहिए।

जब शरीर ठीक रहता है, तो मनुष्य सांसारिक भोगों में लिप्त रहता है। एक उम्र के बाद शरीर दुर्बल और भोग के लिए अयोग्य हो जाएगा। सारी इन्द्रियाँ तुम्हारा साथ छोड़ देंगी। मन अनियन्त्रित हो जायेगा, क्योंकि तुमने मन को नियन्त्रित कर भगवान में लगाने का प्रयास नहीं किया, मन के अनुसार स्वच्छन्द व्यवहार करते रहे। तब क्या करोगे? इसलिए साधना का अभ्यास करो। सरल जीवन बिताओ, नहीं तो बहुत पीड़ा होती है। मानसिक पीड़ा, शारीरिक पीड़ा से हजार गुना अधिक है। मानव शरीर हमें इसलिए मिला है कि हम भगवान को पाने का प्रयत्न करें। हमें संसार में आसक्त होकर नहीं रहना है। संसार से चिपकना नहीं है। जीवन को संतुलित रखना है।

जब हम दवा के साथ परहेज करते हैं, तब हमारी बीमारी ठीक होती है। भगवान हमें बहुत पहले नोटिस देते हैं, लेकिन हम उसकी ओर ध्यान नहीं देते। ध्यान नहीं देने के कारण उससे कष्ट पाते हैं। अपनी क्षमतानुसार नियमित साधना करके मन को वश में रखना चाहिए। इसलिए मध्यम मार्ग अपनाएँ। अधिक कठोरता नहीं, बहुत शिथिलता नहीं। सहज स्वाभाविक ढंग से चलें। मध्यम मार्ग संतुलित जीवन बिताने के लिए पूरक है। इस युग में भगवान ने सबसे बड़ी साधना बताई है, वह है उनका नाम जप। शरीर की दासता से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी आप रोग से मुक्त हो जाओगे। हमारे मन में अशुभ विचार रहते हैं, इन अशुभ विचारों से हमारी शारीरिक, मानसिक हानि ही होती है। इसलिए शुभ विचार करने की आदत डालें और संतुलित जीवन बितायें। अभी तुम मन के गुलाम हो। मन की गुलामी से मुक्त होने के लिए मन को अच्छा प्रशिक्षण नहीं देते हो। अत: भगवान के नाम-जप करने का, शुभ विचारों के चिन्तन करने का, भगवान के साहित्य पढ़ने का अभ्यास कर मन को सही प्रशिक्षण दो।

जन्म-मरण संसार का धर्म है। तुम मर जाओगे, तो तुम्हारा फिर से पुनर्जन्म होगा। भगवान की कृपा से मनुष्य योनि तो मिलेगी ही, किन्तु पुनर्जन्म स्वयं में कष्टकारी है। इसलिये महर्षि-मुनियों ने कहा है कि इसी जन्म में मुक्ति पाने का प्रयत्न करो। इसी जन्म में अच्छे आदमी बनो। पूर्वजन्म के शुभ कर्म के फल से हमें इसी जन्म में सत्संग, साधुसंग मिल रहा है, अच्छे गुरु भी मिले हैं। हम आज जो कुछ हैं, जैसे हैं, यह पूर्व-जन्म का कर्मफल है। इसलिए हमें इसी जन्म में ऐसा शुभ संस्कारित परिवार मिला है। जो लोग झपट प्रवृत्ति में रत रहते हैं, उन्हें अगले जन्म में पशु का जन्म मिलता है। हम सभी को मनुष्य जन्म भगवान को प्राप्त करने के लिये ही मिला है। कुछ थोड़े लोग ही इसके बारे में सोचते हैं। जो लोग अच्छा सोचते हैं उनको भोग में अरुचि पैदा होती है वही जीवन में शुभकर्म करते रहते है और अपना जीवन शुद्ध पवित्र बिताते हैं। अपनी गृहस्थी का पालन करते हैं और अपना कर्तव्य कर्म अच्छे से करते हैं और मुक्ति की ओर बढ़ते हैं। इतना ही समझो की मनुष्य जन्म मिला है तो इसको लेकर शुभ कर्म करना चाहिए। धन संपत्ति के भोग में डूबे रहेंगे, तो अगला जन्म पशु का ही मिलता है।

अधिक उम्र हो जाने के बाद प्रशिक्षण नहीं रहने से कुछ नहीं होता है। सत्संग करो। थोड़ा सहन कर भगवान के नाम के स्मरण में दिन बिताओ। भगवान से हठ करो कि भगवान तुम हमको मिल जाओ। यदि तुम नहीं मिलते, तो तुम्हारा आनन्द हमें दे दो। हम लोग ठाकुर के शरण में हैं, सब कुछ ठीक हो जायेगा। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण

अवधेश प्रधान

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(गतांक से आगे)

देशी पत्रिकाओं में सबसे अधिक 'इंडियन मिरर' ने विवेकानन्द और भारतीय नवजागरण के बारे में उत्साहपूर्वक अपना योगदान दिया। 'बेंगाली' मुख्यत: राजनीतिक पत्र था, लेकिन उसने भी धर्म-जागरण में कभी-कभी रुचि ली। १९ अक्तूबर, १९०० में उसने एक लम्बा सम्पादकीय लेख छापा – दि हिन्दू रेनेसाँस। सम्पादक ने हिन्दू जागरण की प्रबलता को रेखांकित किया, लेकिन उसके तर्कहीन अतिवाद से सावधान भी किया। गलत शिक्षा के प्रभाव से कभी हमारे युवक हिन्दू धर्म की हर बात से घृणा करते थे और यूरोपीय सभ्यता की हर बात से अतिशय अनुराग। तब यही फैशन था। अब उलटी चाल शुरू हो गई है। हिन्दू धर्म की हर बात की प्रशंसा और यूरोपीय सभ्यता की हर बात से घृणा। लड़के जेब में गीता लिए घूम रहे हैं। बहुत सम्भव है, दो-चार श्लोक से अधिक जानते भी न हों। विवेकानन्द ने कभी कहा था, युवकों के लिए गीता-पाठ से अधिक लाभदायक है फुटबाल खेलना। 'बेंगाली' के सम्पादक ने भी लिखा, ''विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म सबसे अधिक व्यावहारिक है। इस धर्म में कर्म, भक्ति, ज्ञान और योग का अद्‌भुत समन्वय हुआ है ताकि इस धर्म के अनुयायी जीवन से विमुख न हों।'' सम्पादक महोदय ने प्राच्य और पाश्चात्य भावों के द्वन्द्व को रेखांकित किया – यूरोपीय भावों से प्रेरित पुराना प्रगतिशील वर्ग हिन्दू पुनरुत्थान को संदेह की दृष्टि से देखता है। पाश्चात्य रीति-नीति का अनुसरण करके जापान कहाँ से कहाँ पहुँच गया। पाश्चात्य विज्ञान और संस्कृति ने जापान को ऊपर उठाकर विश्व के सभ्य राष्ट्रों के पास खड़ा कर दिया। विश्वराजनीति में आज उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि हम भी पाश्चात्य विज्ञान और सामाजिक जीवन को स्वीकार कर लें तो हमारा भविष्य भी जापान की तरह अधिक उज्ज्वल हो उठेगा। पुराने प्रगतिशील वर्ग के इस दृष्टिकोण के विपरीत नया रक्षणशील वर्ग पुनरुत्थान को हर प्रकार की दुर्बलता और त्रुटि की रामबाण औषधि मानता है।

ईसाई मिशनरियों की प्रतिक्रिया स्वभावत: कुछ और तीखी थी। धार्मिक उत्थान का सम्पर्क राष्ट्रीयता से होते देखकर प्रगतिशील और मिशनरी दोनों ही आतंकित हो उठे। 'बाम्बे कैथोलिक एक्जामिनर' ने १३ मार्च, १८९६ को 'इंडियन पेट्रियाटिज्म' शीर्षक लेख में बताया - भारत को असली देशप्रेम सिखाया अँग्रेजों ने और भारतीय हैं कि अपने उन्हीं शिक्षक आचार्य अँग्रेजों की महिमा को मानने को तैयार नहीं हैं! लेखक ने बड़े दुख के साथ लिखा कि भारत में जो देशप्रेम बढ़ता दिखाई दे रहा है, वह भ्रान्त देशप्रेम है। भ्रान्त देशप्रेम अपने राष्ट्र की महिमा के विषय में अतिरंजित धारणा को प्रेरित करता है, अपनी त्रुटियों की तरफ से अंधा बना देता है। अन्य राष्ट्रों में जो श्रेष्ठतर व्यवहार, व्यवस्था और संगठन होता है, उससे घृणा करना सिखाता है। यह भ्रान्त देशप्रेम अग्रगति में बाधक बन जाता है। जैसे पूना के डॉ. भांडारकर और कलकत्ता के मजूमदार आदि श्रेष्ठ देशभक्त हैं। उन्होंने भी पाश्चात्य सभ्यता की घृणापूर्ण आलोचना से सावधान किया है। 'बाम्बे कैथोलिकल एक्जामिनर' ने यह भी बताने की कोशिश की कि भारत की सभ्यता विश्व में सबसे प्राचीन नहीं है; मिस्त्री, हिब्रू, फिनिशियन और बेबीलोनियन सभ्यताएँ उससे प्राचीन हैं। इतना ही नहीं, उस पत्र ने संस्कृत साहित्य की सर्वमान्य प्रतिष्ठा पर भी आघात करने में संकोच नहीं किया - संस्कृत साहित्य में उत्तम वस्तु भी है इसके बावजूद.... वह केवल पुरातात्त्विकों की चर्चा का विषय हो सकता है। नैतिक और शिक्षामूलक विषय में निश्चित रूप से यह साहित्य ग्रीक और रोमन साहित्य से निम्न श्रेणी का है। यह मनुष्य के बौद्धिक विकास को व्याहत करता है और कल्पित कथा-पुराण, मिथ्याचार आदि की ओर खींच ले जाता है।

'अमृत बाजार पत्रिका' ने १४ अक्तूबर, १८९५ के 'दि हिन्दू रिवाइवल' शीर्षक सम्पादकीय का आरम्भ एक सूचना से किया – लन्दन के बेसवाटर में रहनेवाले पार्वतीचरण राय नामक एक व्यक्ति अपनी उग्र नास्तिकता छोड़कर निष्ठावान हिन्दू होकर भारत लौट रहे हैं, उनके साथ उनकी मेम बहू भी हैं। सम्पादक ने निष्कर्ष निकाला कि समय बदल रहा है। आज ऐसा आदमी खोजने से भी नहीं मिलेगा जो प्राच्य संस्कृति की निन्दा करके पाश्चात्य संस्कृति का जयघोष करे।

'लाहौर ट्रिब्यून' ने भी इस जागरण के बारे में सामग्री बराबर छापी। २४ जून, १८९४ को एक लेख छापा-

'एडवान्स्ड स्टेज ऑफ साइन्स इन इंडिया।' २७ जुलाई, १८९९ को 'प्रबुद्ध भारत' से लेकर अरमुथु आयंगार का एक लेख छापा, जिसमें इस जागरण की शक्ति और सीमा दोनों का विवेचन था। इस लेख में कहा गया था कि इस जागरण का चरित्र बहुत कुछ शैक्षिक है, फलत: इसके उदात्त विचार शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रह जा रहे हैं और जनसाधारण तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। आम आदमी को प्रेम और सहानुभूति देकर अपनी ओर खींचने का प्रयास नहीं हो रहा है। फिर भी लेखक ने यह लक्ष्य किया कि अपने देश और धर्म के प्रति लोगों का प्रेम बढ़ रहा है।

'थियोसोफिक थिंकर' ने १७ अगस्त, १८९५ को वी. एस. रघूत्तमाचार्य का लेख छापा – 'स्पिरिचुअल रिवाइल'। इसमें लेखक ने बताया कि सारे संसार में विवेकानन्द और एनी बेसेन्ट के प्रभाव से किस प्रकार धर्मान्दोलन का ज्वार आ गया है। इसी महीने प्रकाशित सेल्वराज मुदालियार के व्याख्यान में यह वाक्य द्रष्टव्य है, ''वर्तमान भारत के सर्वाधिक विख्यात आचार्य स्वामी विवेकानन्द के समयोचित आविर्भाव के द्वारा भारत के अत्यन्त प्राचीन धर्म में नई प्राण-तरंग प्रवाहित हुई है, इसलिए वर्तमान धार्मिक उत्थान में अपना योगदान करना भूल जाना उचित नहीं है।

'आर्य बालबोधिनी' ने नवम्बर, १८९५ के अंक में लन्दन में एक 'हिन्दू एसोसिएशन' स्थापित होने पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और लिखा कि ''दस-पाँच बरस पहले यदि पूछा जाता कि अधिकांश हिन्दू, हिन्दू-धर्म में विश्वास करते हैं कि नहीं, तो उत्तर 'नहीं' होता। आज के भारतीय स्वयं को मूर्तिपूजक कहकर अपना परिचय देने में लज्जा का अनुभव नहीं करते। वे ऐसे तर्क के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन करते हैं, जिसका इंग्लैण्ड के मूर्तिद्वेषी भी खंडन करने का साहस नहीं कर सकते।'' भारत में इस समय हिन्दू संस्कृति के प्रचार के लिए नाना संघ-समितियाँ खड़ी हो रही हैं। उनमें मद्रास का 'यंग मेन्स हिन्दू एसोसिएशन' सचमुच एक शक्तिशाली प्रतिष्ठान हो उठा है...। ९ अगस्त, १८९४ को 'हिन्दू' ने अपने सम्पादकीय में लिखा, ''ईसाई मिशनरी और अँग्रेज सरकार ने जनता के प्राचीन धर्म को ध्वंस करके उसकी जगह ईसाई धर्म का प्रचार तेजी से करने की जो कोशिश की है उसका फल उलटा हुआ है। हिन्दू धर्म इतना शुद्धिकृत सतेज रूप लेकर उभरा है कि वह हिन्दुओं के शिक्षित और तर्कशील मन के लिए बहुत अधिक वरणीय हो गया है। सभ्य जगत में उसकी मर्यादा ऊपर उठी है... हिन्दू धर्म जो कभी नहीं था, वही हो गया है अर्थात् जातीय धर्म। यही हिन्दू धर्म की विराट शक्ति का उत्स है। अतीत में हिन्दू धर्म अनेक प्रकार की जातियों का एक मिश्रित धर्म था। ये जातियाँ आपस में लड़ती रहती थीं और उनके धर्म – विश्वास में एकता नहीं थी। लेकिन इस समय विदेशी शासन के अधीन रहते हुए इन विभिन्न जातियों ने स्वयं को एक जाति के रूप में सोचना शुरू कर दिया है और हिन्दू धर्म जातीय धर्म बनकर उठ खड़ा हुआ है। 'हिन्दू' ने इस नवजाग्रत धर्म के आचार्य के रूप में विवेकानन्द का स्मरण इन शब्दों में किया, ''स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ आचार्य की भाषा में कहा था, 'साधुत्व, पवित्रता और दयाशीलता विश्व के किसी एक विशेष धर्म की सम्पदा नहीं है। प्रत्येक धर्म ने सर्वोन्नत चरित्र वाले पुरुषों और स्त्रियों को जन्म दिया है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण रहते हुए भी, यदि कोई यह स्वप्न देखता है कि अन्य धर्मों का लोप हो जाएगा और केवल उसी का धर्म बचा रहेगा, तो वह दया का पात्र है और बता देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा - सहायता करो, लड़ो मत, पर-भावग्रहण न कि परभाव-विनाश, समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह।''

'लाइट ऑफ दि ईस्ट' ने सितम्बर, १८९४ में इस जागरण में विवेकानन्द और एनी बेसेन्ट की भूमिका की खुलकर प्रशंसा की। अप्रैल, १८९७ के अंक में 'दि हिन्दू रिवाइवल' शीर्षक सम्पादकीय लेख छपा। सम्पादक ने जड़वाद के ऊपर अध्यात्मवाद की विजय की वैश्विक पृष्ठभूमि में इस नवोत्थान का वैशिष्ट्य रेखांकित करते हुए लिखा, ''वर्तमान पुनरुत्थान एक नया आन्दोलन है, जिसका केन्द्र भारत है, लेकिन उसने अपने प्रभाव में संसार के सभी देशों को ले लिया है। गहरी अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न मनुष्य यह लक्ष्य कर सकते हैं कि इस आन्दोलन का चरित्र इतना अनन्य है कि अतीत के किसी आन्दोलन से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। १९वीं शताब्दी धर्म और विज्ञान का एक विचित्र मिश्रण है। यह भी कहा जा सकता है कि वह धर्म के साथ विज्ञान के अध्ययन का फल है।'' लेखक ने बताया कि इस बीच विज्ञान भी जड़वाद के घेरे से निकल कर अनिवर्चनीय सर्वव्याप्त अनन्त अस्तित्व के दिगंत में पहुँच गया है। मनोविज्ञान की खोज मानव मन की गहराई में गोते

लगा रही है। आधुनिक विचारकों ने स्पष्ट कहा है कि जड़ से चेतना की उत्पत्ति नहीं हुई है। ऐसी स्थिति में धर्म का भी चरित्र बदल गया है। उसने बहुत कुछ विज्ञान की परीक्षा पद्धति को अपना लिया है। ''इसीलिए धर्म के रिवाइवल को रिलिजियो-साइन्टिफिक रिवाइवल कहा जा सकता है।'' सम्पादक ने ध्यान दिलाया कि ''आज विज्ञान का झुकाव अद्वैतवाद की ओर है। प्रकृति की समस्त अभिव्यक्तियों का मूल संधान करके वह आदि कारण तक पहुँच गया है, जहाँ द्वैतत्व, बहुत्व पूर्ववत् नहीं रह जाता।'' फिर विज्ञान यह कहने की स्थिति में नहीं है कि वस्तु की उत्पत्ति जड़ से नहीं, चेतना से है। सच्चा धर्म पुरोहितवाद और साम्प्रदायिकता से भिन्न है और उसका भी लक्ष्य विज्ञान की तरह सत्य को जानना है। ''धर्म विज्ञान से और आगे जाता है। विज्ञान के लिए जो आदि कारण अज्ञात है, उसे धर्म ने चेतना के द्वारा आवृत किया है। धर्म के लिए यह आदि कारण जड़ नहीं, जीवन्त सत्य है, वह एक ऐसा अस्तित्व है, जो सृष्टि में सर्वत्र अनुस्यूत है, वह जिस प्रकार प्रचंड शक्तिशाली मनुष्य में है उसी प्रकार बालू के कण में भी है।'' सम्पादक ने इस अस्तित्व के लक्षण को उपनिषदों की शिक्षा के प्रकाश में व्याख्यायित करने का प्रयास किया है और बताया है कि ''यह धर्म उपनिषदों के उत्स से निकला है। वर्तमान हिन्दू रिवाइवल का यह काल-लक्षण है।'' इस काल-लक्षण या युग-सत्य को ध्यान में रखकर सम्पादक ने लिखा है, कि यह आधुनिक हिन्दू रिवाइल शंकराचार्य, रामानुजाचार्य या चैतन्य के समय के धार्मिक-जागरण के मार्ग का अनुसरण कदापि नहीं करेगा। ''आज का मनुष्य अतीत काल से भिन्न है, परिवेश, मिजाज सब भिन्न है।'' इसीलिए वर्तमान युग के लिए उपयोगी होने के लिए हिन्दू उत्थान ने पूरी तरह नया आकार ग्रहण किया है। ''आधुनिक धर्म जागरण आधुनिक काल का उत्पादन है।'' इसीलिए पुराणपंथी रक्षणशील विचारधारा के लोग इसे रोक नहीं सकते। सम्पादक ने जोर देकर लिखा – कलियुग का एक मिशन है, विवेकानन्द इस मिशन के प्रतिनिधि बनकर आए हैं, यह बात समझने की सामर्थ्य पुराणपंथियों में नहीं है। सम्पादक ने अन्त में लिखा - ''एक विराट पुरुष समग्र जाति की ओर से चिन्तन करते हैं, समग्र जाति की भावानुभूति को व्यक्त करते हैं। अगर यह सत्य है, तो विवेकानन्द की सफलता सुनिश्चित है। **(समाप्त)** ○○○

पृष्ठ ६०९ का शेष भाग

कि – ब्रह्म के सन्दर्भ में शब्द ज्ञान, परोक्ष ज्ञान नहीं, अपरोक्ष ज्ञान चाहिए। 'तत्त्वमसि' सुनने के साथ-साथ अहं ब्रह्मास्मि का बोध होगा। इस सम्बन्ध में कहते हैं – ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान अर्थात् शाब्द ज्ञान क्या परोक्ष होता है? ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान सर्वदा अपरोक्ष होता है। हाँ, यह ठीक है, किन्तु कार्यत: देखा जा रहा है कि इतना सुनने के बाद भी ज्ञान नहीं हो रहा है। अर्थात् देखा जा रहा है कि ब्रह्म सम्बन्धी शाब्द-ज्ञान हुआ है, अपरोक्ष ज्ञान नहीं हुआ है। क्योंकि अज्ञान का नाश नहीं हुआ है। अपरोक्ष ज्ञान होने से अज्ञान का नाश हो जाता है।

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने कहा है, वासना का नाश नहीं होने से प्रेम नहीं होता। वासना का नाश कैसे किया जाय?

महाराज – विचार के द्वारा वासना का नाश होता है, प्रार्थना से होता है। ठाकुर ने यह भी कहा है – अनुराग रूपी वायु गप-गपकर काम क्रोधादि को खा जाती है। अर्थात् प्रेम होने पर वासना चली जाती है। यह संसार अनित्य है, ऐसा बोध नहीं होने से वासना नहीं जाती है।

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने इतनी प्रार्थना की बातें कही हैं। हम लोग प्रार्थना भी करते हैं, किन्तु वह फलीभूत नहीं होती है।

महाराज – क्योंकि विश्वास नहीं है। यह विश्वास नहीं है कि वे हमारी प्रार्थना पूर्ण कर सकते हैं। जैसाकि ठाकुर ने कहा कि नदी में उतरकर राम-नाम भी करेंगे और अविश्वासवश वस्त्र भी उठायेंगे, यह नहीं होगा।

– कब तक ऐसी प्रार्थना करनी होगी?

महाराज – जब तक वे दर्शन नहीं दे रहे हैं, तब तक। देखते नहीं हो, कैसे भिखारी एक ही स्थान पर पड़ा रहता है। केवल कहता है – माँ पैसा दो, माँ पैसा दो।

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने 'शक्ति अवतार' कहा है। इसका क्या तात्पर्य है?

महाराज – ब्रह्म तो निर्गुण है, किन्तु अवतरण हेतु तो सगुण – व्यक्ति का रूप चाहिए। इसीलिए शक्ति का अवतार है। इसीलिए सामान्यत: लोग विष्णु का अवतार कहते हैं। अवतार तो रक्षा करने आते हैं। विष्णु भगवान सृष्टि की रक्षा करते हैं। यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु और शिव, तीनों ही शक्ति हैं। जब परमेश्वर संहार कर रहे हैं, तब भी वह भी ब्रह्म की ही शक्ति हैं। ***(क्रमश:)***

साधुओं के पावन प्रसंग (१२)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

उस दिन से गम्भीर महाराज ने 'युगनायक विवेकानन्द' लिखना आरम्भ किया। दो वर्षों के भीतर ही प्राय: दो हजार पृष्ठ लिख दिए। वे बहुत द्रुत लिखते थे। मैं तब प्रशिक्षण केन्द्र में था और उस पुस्तक का सम्पादक था। जो तथ्य वे पुस्तक में सम्मिलित नहीं कर सके थे, मैं उन्हें ढूँढकर देता था। एक बार उनसे कहा, "महाराज, आपने मेरठ में हुई घटना तो दी ही नहीं। हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) के पत्र में उसका उल्लेख है। स्वामीजी ने एक दिन पुलाव बनाया और गुरुभाइयों को परोसकर खिलाया। अपने लिए कुछ भी न रखा। गुरुभाइयों ने कहा, 'स्वामीजी, आपने स्वयं के लिए तो कुछ भी नहीं रखा।' स्वामीजी ने कहा, "मैंने जीवन में बहुत खाया है, तुम सब खाओ।"

स्वामीजी ने सब दे दिया और स्वयं कुछ भी न खाया। इस प्रकार की छोटी-छोटी घटनाएँ मैं महाराज को देता और वे सब पुस्तक में जोड़ देते। एक दिन उनसे पूछा, महाराज, आप किस प्रकार इन घटनाओं को जोड़ देते हैं। महाराज ने कहा, "देखो, निखिलानन्द महाराज से यह प्रणाली सीखी थी। वे जिस लेखन सामग्री को सम्मिलित करना चाहते थे, उसे कागज पर लिख देते और काटे हुए स्थान पर चिपका देते। इस प्रकार सीखा है, इसलिए मुझे पूरा पृष्ठ पुन: लिखना नहीं पड़ता।"

उस समय कम्प्यूटर तो था नहीं। सब हाथ से ही लिखना पड़ता था। गम्भीर महाराज का पुस्तक लिखना तीन खण्डों में पूरा हो गया। उन्होंने प्रत्येक खण्ड का नाम दिया – प्रस्तुति, प्रचार, प्रकल्प। मैंने थोड़ी आपत्ति जताई और महाराज से कहा, "महाराज, प्रकल्प तो होगा नहीं, यहाँ जमेगा नहीं।"

– क्यों?

– प्रकल्प अर्थात् प्रकृष्टरूपेण कल्पना। स्वामीजी ने क्या संघ की कल्पना की थी? मेरे अनुसार प्रवर्तन शब्द अधिक उपयुक्त होगा। प्रकल्प का 'प्र' अनुप्रास भी यहाँ आ जाएगा।

– 'प्रवर्तन' शब्द के विषय में तुम्हारी क्या युक्ति है, बताओ।

– महाराज, भगवान बुद्ध जब निर्वाण-प्राप्ति कर सारनाथ आए, तब उन्होंने 'धर्मचक्र प्रवर्तन' किया। प्रवर्तन शब्द ही यहाँ जमेगा। स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ का प्रवर्तन किया था।

– अच्छा, क्या कहा तुमने? उसे ही रखो।

और यदि कोई होते, तो कहते – नहीं, मैंने जो लिखा है, वही ठीक है। गम्भीर महाराज को युक्ति बता देने से ही वे मान जाते थे।

स्वामीजी ने कहा है, "Love and freedom are the two conditions for growth. विकास की दो शर्तें हैं – प्रेम और स्वाधीनता।" ये दो बातें गम्भीर महाराज से पर्याप्त प्राप्त की हैं। तब वे मठ-मिशन के महासचिव थे। एक दिन उन्होंने अचानक मुझसे पूछा, "क्या चाहिए?" मैंने कहा, 'कुछ भी नहीं।' उन्होंने पूछा, "आशीर्वाद भी नहीं चाहिए?" मैंने कहा, "आप तो सदा ही मुझ पर आशीर्वाद कर रहे हैं। इसलिए उसे माँगने की आवश्यकता नहीं है।" वे हँसे। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ६०४ का शेष भाग

महाराणा ने चम्पा को गोद में उठाकर शपथ लिया। चम्पा खुश हुई और भूख के कारण अपने पिता की गोद में अन्तिम साँस ली। महाराणा एक बच्चे के समान फूट-फूटकर रोने लगे।

उनकी सुपुत्री चम्पा ने अपना जीवन देकर पिता महाराणा प्रताप सिंह को नवजीवन दिया। उनको स्वाभिमान से जीने के लिए प्रेरित किया। ○○○

अद्भुत श्रीरामकृष्णदेव और स्वामी विवेकानन्द !

महेन्द्रनाथ दत्त

(लेखक श्रीमहेन्द्रनाथ दत्त स्वामी विवेकानन्दजी के छोटे भाई थे। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द और अन्य गुरु-भाइओं के सम्बन्ध में अपने ग्रंथों में संस्मरण लिखे हैं। प्रस्तुत घटना स्वामीजी और उनकी जननी भुवनेश्वरी देवी के प्रसंग में है। यह घटना श्रीरामकृष्णदेव का अद्भुत जीवन, उनका स्वामीजी के प्रति दिव्य प्रेम और स्वामीजी के अद्भुत संयम को दर्शाती है। इसे विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए मीनल जोशी, नागपुर ने प्रस्तुत किया है।)

महेन्द्रनाथ दत्त

माँ हमेशा रेशम का वस्त्र पहन कर पूजा करती थी। वह वस्त्र पुराना और जीर्ण हो गया था। इसलिए एक दिन माँ ने नरेन्द्रनाथ से कहा, 'अगर नया रेशमी वस्त्र मिल जाता, तो पूजा करने में सुविधा होती।' कुछ दिन पहले ही नरेन्द्रनाथ के पिता श्री विश्वनाथ दत्त जी का निधन हुआ था। इसलिए नरेन्द्रनाथ पर पूरे घर का दायित्व आ पड़ा था। तब नरेन्द्रनाथ को धन-अर्जन के लिए कहीं काम नहीं मिल रहा था। पैसों के अभाव में वे रेशमी वस्त्र कहाँ से लाते! माँ को रेशमी वस्त्र देने में असमर्थ नरेन्द्रनाथ माँ को कुछ भी उत्तर न देकर निराश मन से सिर झुकाए वहाँ से चले गए।

एक दिन एक मारवाड़ी, परमहंस भगवान श्रीरामकृष्ण देव के पास आया। उसने श्रीरामकृष्ण देव को प्रणाम कर रेशमी वस्त्र और एक बीकानेर की मिश्री से भरा हुआ थाल भेंट किया। वैसी उच्च कोटि की मिश्री आजकल विरले ही देखने को मिलती है। उत्कृष्ट होने के कारण ही उन वस्तुओं को मारवाड़ी भक्त ने परमहंसदेवजी को पूरी श्रद्धा से अर्पण किया था। इस घटना के एक-दो दिन बाद ही नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर गए। परमहंसदेव नरेन्द्रनाथ को बार-बार आग्रह करने लगे, ''तुम यह रेशमी वस्त्र और मिश्री की थाली घर ले जाओ।'' नरेन्द्रनाथ वह थाली लेने के लिए बिलकुल राजी नहीं हो रहे थे। अन्त में परमहंसदेव ने उन्हें कहा, ''तुम यह रेशमी वस्त्र ले लो, तुम्हारी माँ वह वस्त्र पहन कर पूजा करेगी।'' यह सुनकर नरेन्द्रनाथ आश्चर्यचकित हो परमहंसदेव की ओर देखते रह गए। मन-ही-मन सोचने लगे कि कितने आश्चर्य की बात है! घर में भी इस सम्बन्ध में ही चर्चा हो रही थी। वे चुपचाप बैठे रहे और बाद में उन वस्तुओं को लिए बिना वहाँ से चले गए।

एक-दो दिन बाद परमहंसदेव ने रामलाल (श्रीरामकृष्णदेव के भतीजे) से कहा, ''रामलाल, तुम जल्दी भोजन कर लो, और शिमला के नरेन्द्रनाथ की माँ को यह रेशमी वस्त्र और मिश्री की थाली देकर आओ। अन्य किसी के हाथ में मत देना।''

रामलाल उनके निर्देशानुसार शिमला आए। तब गरमी के दिन थे। बहुत धूप थी। करीब ग्यारह बजे होंगे। वे हमारे घर आए और मुझे बाहर के कक्ष में बुलाकर सारी बात बताई। मैंने तुरन्त माँ को बुलाया। रामलाल ने माँ को सविस्तार वृत्तांत सुनाया और मिश्री का थाल तथा रेशमी वस्त्र उन्हें दिया। माँ ने मुस्कुराते हुए कहा, ''घटना यहाँ घटी और टेलिग्राफ गया दक्षिणेश्वर।''

स्वामी विवेकानन्द जीवन के अन्तिम समय में बहुमूत्र रोग से आक्रान्त थे। कविराज (वैद्य) की दवाई चल रही थी। उन्होंने स्वामीजी को एकतालीस दिन पानी न पीने की सलाह दी। किन्तु इच्छानुसार दूध पीने की छूट दी थी। एक दिन स्वामीजी गिरीशबाबू के घर गए थे। गिरीशबाबू ने उन्हें पूछा, ''आप बहुमूत्र रोग से पीड़ित हैं, फिर एकतालिस दिन बिना पानी पिए कैसे रह सकेंगे?'' इस पर स्वामीजी ने कहा, ''मैंने एकतालिस दिन पानी न पीने की आज्ञा शरीर को दे दी है।'' गिरीशबाबू ने हँसते हुए कहा, ''ये क्या बात है कि शरीर को आज्ञा दे दी है?'' स्वामीजी ने कहा, ''एक गिलास पानी लाइए।'' स्वामीजी ने उस गिलास के पानी का माप दिखाकर सारा पानी पिया। गिलास में कुछ भी पानी नहीं था। थोड़ी ही देर बाद स्वामीजी ने बिलकुल पहले जैसा स्वच्छ एवं उतनी ही मात्रा में जल वमन कर गिलास में निकाल दिया। गिरीशबाबू विस्मित हो देखते रह गए। स्वामीजी ने कहा, ''शरीर एक बूँद पानी नहीं लेगा।'' भक्त गिरीशबाबू स्वामीजी की प्रशंसा करने लगे। इस पर स्वामीजी ने हँसते हुए कहा, ''चूप साले जी.सी.! इतनी सामान्य बात पर चकित हो गए? इसे कहते हैं – 'स्नायु का नियन्त्रण'।'' ○○○

परिग्रहो हि दुःखाय

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(गतांक से आगे)

सात्त्विक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन का अर्थ ही आन्तरिक परिवर्तन करना है, न कि बाह्य वस्तुओं का संचय या संग्रह। आध्यात्मिक जीवन में स्वयं कुछ 'होना' 'बनना' पड़ता है। दूसरी ओर संग्रह में हम आन्तरिक परिवर्तन किये बिना जीवन की रिक्तता को वस्तुओं, उपलब्धियों आदि से भरना चाहते हैं। अँग्रेजी में इन दो दृष्टिकोणों को "Being" और "Having" कहा गया है। Having को स्वीकार करनेवाला व्यक्ति यह देखता है कि उसके पास कितनी वस्तुएँ, कितनी बौद्धिक, सामाजिक और भौतिक उपलब्धियाँ हैं। Being में विश्वास करनेवाला व्यक्ति यह देखने का प्रयत्न करता है कि उसने सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम, सेवा आदि को अपने जीवन का, अपने चरित्र का अंग बनाया या नहीं। वह सामान्य पशु-मानव से श्रेष्ठ मानव, महामानव या देव मानव बना या नहीं। जो साधक इस बनने को महत्त्व देगा, वह तत्काल यह समझ लेगा कि वस्तुओं का स्वयं के पास होना आध्यात्मिक दृष्टि से कितना मूल्यहीन है।

अपरिग्रह के आध्यात्मिक महत्त्व को समझने के बाद आइए, इसकी साधना के कुछ व्यावहारिक सूत्र बटोरने का प्रयत्न करें। सर्वप्रथम तो, उसके महत्त्व को भली प्रकार से हृदयंगम करना, मन में अच्छी तरह बिठा लेना, अपने आप में अति आवश्यक साधना है। परिग्रह कष्टकर है, हानिकारक, बन्धनकारक है, यह बात मन में यदि दृढ़ रूप से बैठ जाय, तो इसकी साधना करनी नहीं पड़ेगी। जिस प्रकार पश्चिम की ओर जाने से पूरब अपने आप दूर होता जाता है, उसी तरह निष्ठापूर्वक भगवत्-चिन्तन में लगने से उससे विपरीत सारी बातें धीरे-धीरे छूट जाती हैं, उनसे हम अपने आप दूर होते जाते हैं। जो साधक ८-१० घंटे प्रतिदिन जप-ध्यान करता हो, उसे संग्रह की चिंता करने अथवा वस्तुओं का संग्रह करने का समय और मानसिक अवकाश ही कहाँ मिलेगा। तात्पर्य यह है कि अपरिग्रह का पहला उपाय है, भगवत्-चिन्तन और अपरिग्रह की आवश्यकता को विचारपूर्वक बुद्धि में प्रतिष्ठित कर देना।

अगर कोई व्यक्ति तत्काल अपने समग्र भौतिक, सामाजिक बन्धनों को त्यागकर सर्वत्यागी संन्यासी हो जाये, तो फिर बात ही क्या है। श्रीरामकृष्ण एक कथा सुनाया करते थे – दो व्यक्तियों की। एक की सोलह स्त्रियाँ थी और वह वैराग्यवान होकर धीरे-धीरे एक-एक का त्याग करने को तत्पर हुआ था। दूसरे व्यक्ति ने जब यह सुना तो उसने कहा कि त्याग इस तरह धीरे-धीरे नहीं होता। वह तो तत्काल होता है – यों कहकर जिस अँगोछे को कंधे पर रखकर वह स्नान के लिये जा रहा था, उसे उसी तरह लेकर घर से निकल पड़ा।

इस प्रकार का एक क्षण में तत्काल सभी परिग्रहों का त्याग बहुत कम लोगों के जीवन में सम्भव है। हम अधिकांश व्यक्तियों में वैराग्य ऐसा तीव्र नहीं होता। अत: हमें अपनी वैराग्य की तीव्रता अथवा मंदता के अनुरूप अपरिग्रह का अभ्यास करना चाहिए। इसका उपाय है, धीर-धीरे अपनी आवश्यकताओं को कम करना। संसार में बहुत कम धन, सामग्री आदि वाले लोग भी हैं और विपुल संपत्ति वाले लोग भी।

कुछ लोग एक चप्पल से काम चला लेते हैं, तो अन्य कुछ लोगों के पास बीसों जोड़ी जूते-चप्पलें होती हैं। तात्पर्य यह कि सभी की अपनी-अपनी आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। कभी-कभी आवश्यकता और विलासिता में अन्तर करना, उनके बीच की रेखा, सीमा निर्धारित करना कठिन हो जाता है। लेकिन फिर भी हम जहाँ, जिस स्थिति में हैं, वहीं से अपनी आवश्यकताओं को कम करते चलें। हम 'पीस पिलग्रिम' की तरह सर्वस्व का त्याग नहीं कर सकते, पर अपने वस्त्रों, जूतों, पुस्तकों को कम तो कर सकते हैं।

कम करने की इस प्रक्रिया में जितना है, उससे अधिक न जोड़ना, और जो है, उसे दूसरों को देना या त्यागना दोनों कार्य किये जाने चाहिए। स्वयं से प्रश्न करें – क्या मैं अमुक वस्तु के बिना रह सकता हूँ? क्या अमुक वस्तु के बिना मेरा जीवन-निर्वाह हो सकता है? यदि यह प्रश्न आन्तरिक होगा तथा हम निर्भय होकर इसका उत्तर खोजने का प्रयत्न करेंगे, तो पाएँगे कि हम संग्रह की गयी अधिकांश वस्तुओं के बिना रह सकते हैं।

वस्तुओं को कम करने का कार्य सर्वप्रथम उन वस्तुओं से किया जाय, जिनका जीवन-निर्वाह से सीधा सम्बन्ध नहीं है। यथा, हमारे कक्ष में लगी सजावटादि की वस्तुएँ, चित्र, तथा अन्य आडम्बरादि। इन्हें कम करने में अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसी तरह कक्ष का फर्नीचर, टेबल, कुर्सी आदि भी आवश्यकता से अधिक न हों। फाउन्टपेन, घड़ी, जूते-चप्पल इत्यादि के बारे में भी यही नियम लागू किया जा सकता है। कुछ लोगों को पुस्तकों का शौक होता है। पुस्तकें पढ़ना नहीं है, लेकिन उनका संग्रह करना और इन संग्रह का एक प्रकार का अभ्यास बन जाना बुरा है। पुस्तकें पढ़ने की तुलना में उनमें लिखी बातों को जीवन में, आचरण में उतारना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से एक सद्ग्रन्थ में लिखी बातें ही सारे जीवन के लिये पर्याप्त हैं।

जीवन-निर्वाह से सीधे सम्बन्धित न रहनेवाली वस्तुओं को धीरे-धीरे कम करने के बाद जीवन-निर्वाह से सीधे सम्बन्धित वस्तुओं को भी कम करना चाहिए। यथा वस्त्रादि आवश्यकता से अधिक न रखें। जब दो जोड़ी कपड़ों से काम चल जाता है, तो अधिक रखने की क्या आवश्यकता? यदि एक गरम शाल, एक या दो कंबलों से अधिक जाड़े में भी शीत से रक्षा हो सकती है, तो अधिक क्यों? एक समय में २ या तीन स्वेटरों से अधिक तो कोई भी पहन नहीं सकता। फिर दस स्वेटरों का क्या प्रयोजन? इस तरह प्रत्येक को अपनी शारीरिक आवश्यकता का सही आकलन कर उसके अनुरूप सभी वस्तुओं को सीमित कर लेना चाहिए। योगीगण निजस्व को त्याग देते हैं और उसके बाद प्राणधारण के लिये जितना अल्पतम आवश्यक है, उसी का ग्रहण करते हैं। इसी पद्धति को न्यूनाधिक मात्रा में व्यक्तिगत परिस्थिति के अनुसार अपने जीवन में अपनाना चाहिए।

सबसे महत्त्वपूर्ण है धनसंग्रह का त्याग। गृहस्थ साधक के लिए पूर्णरूपेण धन का त्याग सम्भव नहीं है, लेकिन वह अपनी धन सम्पत्ति की एक सीमा निर्धारित कर सकता है, जिससे अधिक वह संग्रह न करे। एक बार परिणाम निर्धारित करने के बाद उसका न तो उल्लंघन करना चाहिए, और न ही उसके बाद में बढ़ाना चाहिए। इसके विपरीत, धीरे-धीरे उसे कम करते जाना चाहिए।

इसके साथ यह भी आवश्यक है कि अपना खर्च कम किया जाय। अगर खर्चा अधिक होगा, तो धन की आवश्यकता भी अधिक होगी। कुछ लोगों की मान्यता है कि दूसरों की सहायता के लिए, दान के लिए धन रखने में कोई दोष नहीं है। लेकिन साधक के लिए अपने पास अल्पतम रखना अधिक श्रेयस्कर है, भले ही इसके कारण दान करना सम्भव न हो। अपने दारिद्र्य और अपरिग्रह से साधक समाज की दान से अधिक सेवा करता है। यदि सभी अपरिग्रही हो जाएँ, तो सामाजिक समस्याएँ अपने आप हल हो जाएँगी। अतः अपरिग्रह का आदर्श प्रस्तुत करना दूसरों की आर्थिक आवश्यकताओं को दूर करने से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

यदि किसी कारण से अपने पास अधिक धन रखना आवश्यक हो जाए, तो उसे एक न्यासी की तरह रखना चाहिए यह सोच कर कि यह धन मेरा नहीं है, परमात्मा ने सुद्देश्य के लिये दिया है। उस धन को स्वयं के लिए नहीं, बल्कि दूसरों की सहायता के लिये काम में लाना चाहिए। लेकिन ऐसी स्थिति में भी मानसिक विक्षेप की सम्भावना तो रहती ही है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि धन रहने पर चाहे उसके लिये हो या दूसरों के लिये, मेघ तो उठेंगे ही। और फिर न्यासी के रूप में धन के मालिक बनने पर धीरे-धीरे अनासक्ति समाप्त होकर उसके प्रति आसक्ति आने में कितनी देर लगती है?

धन सुरक्षा प्रदान करता है। धन-संग्रह से व्यक्ति को ऐसा लगता है कि वह सुरक्षित है। लेकिन जो साधक भगवान को ही अपना सर्वस्व बनाना चाहता है। उसके लिए धन के प्रति ममत्व होना, धन में सुरक्षा खोजना, बिल्कुल विपरीत बात है। वह तो अपना जीवन परमात्मा पर ही छोड़कर पूर्णरूप से निश्चिन्त होना चाहता है। संसार से अनभिज्ञ एक ब्रह्मचारी पहली बार भिक्षा करने गाँव में आया। एक नव-यौवना अविवाहिता युवती उसे भिक्षान्न देने के लिये अपनी माँ के साथ घर के बाहर आयी। ब्रह्मचारी ने वृद्धा माता से पूछा कि युवती के सीने पर दो बड़े-बड़े फोड़े कैसे हैं? माता ने भले ब्रह्मचारी को समझाया कि जब इस कन्या के विवाह के बाद सन्तान होगी, तब उसके आहार हेतु दूध के लिये भगवान ने स्तन बना दिये हैं। ब्रह्मचारी ने सोचा कि जब जन्म के पहले ही भगवान ने बच्चे के भरण-पोषण की व्यवस्था कर दी है, तो फिर मैं क्यों भिक्षाटन करूँ? मेरी भी व्यवस्था भगवान ही करेगा। अपरिग्रही साधक का यही भाव होता है। वह यह जानकर निश्चिन्त रहता है कि मेरे भरण-पोषण, सुरक्षादि का दायित्व भगवान का है। **(समाप्त)** ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३६)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

१९०२

(४ जुलाई १९०२ ई. के दिन स्वामीजी – इहलोक को त्यागकर महासमाधि में प्रविष्ट हुए। इसके बाद का उनका सारा जीवन – स्वामीजी तथा उनके विचारों के चिन्तन-मनन तथा उनकी परिकल्पनाओं के क्रियान्वयन में बीता।)

१६ जुलाई, १९०२ : मैक्लाउड को

(स्वामीजी की महासमाधि का) वह अन्तिम दृश्य कितना असाधारण हुआ था, इसकी तुम शायद ही कल्पना कर सको! कैसे अब उनके शत्रुगण तक साँस रोके हुए उनकी पूजा करते हैं?

सन्ध्या के समय, ध्यान करने के उपरान्त उन्होंने धीरे से एक जीर्ण वस्त्र के समान अपना शरीर त्याग दिया! ''मेरी मृत्यु एक महामृत्यु होगी, 'हर, हर, हर' बोलते हुए चला जाऊँगा।'' मुझे उनकी इस पुरानी उक्ति का स्मरण हो आया; और यह सत्य भी प्रमाणित हुआ। अभी उनकी मालाएँ सूखी भी न थीं, उनका कवच देदीप्यमान था और सब कुछ व्यवस्थित रूप से चल रहा था – (परन्तु) वे चले गये। स्वामीजी! हे स्वामीजी! मुझ पर सर्वदा आपका आशीर्वाद बना रहे, ताकि मैं आपकी व्यक्तिगत सनकों या दुर्बलताओं के स्थान पर आपकी आन्तरिक इच्छाओं को रूपायित कर सकूँ। यहाँ तक कि अपने गुरुदेव के भी वैयक्तिक पहलू के स्थान पर निर्वैयक्तिक व्याख्या करने की क्षमता ही महान् शिष्यत्व के साथ दुर्बल शिष्यत्व का भेद प्रकट करता है, क्या आप भी ऐसा ही नहीं सोचती? ... जो होना उचित था, उससे यह कितना बदल गया है – दो महीने पहले स्वामीजी कितने नाराज थे; और लोग निश्चित रूप से यह मानते हैं कि उन्होंने जो कुछ कहा था, मुझे वही करना चाहिये। इसके बावजूद मैं जो कर रही हूँ, उससे कुछ भिन्न नहीं कर सकती। मैं स्वयं ही अब एक विचार की प्रतिमूर्ति बन चुकी हूँ और यह सब मान लेने की जगह मेरे लिये मर जाना कहीं अधिक आसान होगा!

अब और अधिक नहीं लिखूँगी। सारा जगत् उनकी पूजा कर रहा है, परन्तु मैं जानती हूँ कि तुम्हारा हृदय उनके नाम को समर्पित सर्वश्रेष्ठ पूजागृह है। तुम अस्वस्थ हो, अत: तुम्हें और अधिक थकाना मेरे लिये उचित नहीं होगा।

२८ जुलाई, १९०२ : मैक्लाउड को

सदानन्द अपनी सर्वश्रेष्ठ मन:स्थिति में हैं। उन्हें सर्वप्रथम मेरे द्वारा ही स्वामीजी के अन्तिम दिनों का विवरण प्राप्त हुआ। उनके जाने के पहले ही ४ मई के दिन सदानन्द को आभास हो गया था कि उनका अन्त निकट आ रहा है। क्योंकि वे 'अति कृपालु' हो गये थे और वे बड़े ही संकोचपूर्वक अपने आप में ही मुस्कुराया करते थे। ब्रह्मानन्द ने उनसे कहा था कि 'श्रीरामकृष्ण के समान ही वे भी चले जायेंगे', क्योंकि उन्हें प्रतिदिन उनके भीतर श्रीरामकृष्ण दिखाई दे रहे थे। ...

सदानन्द को ज्ञात है कि वे सर्वदा हम लोगों के साथ हैं। यदि हम कुछ गलत भी करना चाहें, तो ''वे हमारी रक्षा करेंगे।'' उन्होंने हृषीकेश में उनसे संन्यास की पहली दीक्षा पायी थी और उनसे कहा था, ''स्वामीजी, यदि कभी मेरा पतन हुआ, तो?'' इस पर उन्होंने उत्तर दिया था, ''सौ बार पतन हो, तो भी परवाह मत करना! मैं जिम्मेदार हूँ। मैंने तुम्हें चुना है। तुमने मुझे नहीं चुना।'' ...

पिछले तीन-चार महीनों से वे भोर में ३.३० या ४ बजे ही सभी लोगों को ध्यान करने के लिये उठा देते थे। वे लोग गंगाजी में डुबकी लगाकर ४.३० बजे तक मन्दिर में पहुँच जाते थे। बहुत दिनों से मैं भी मानो सूर्योदय के पहले ही उठ जाती और एक मिनट बैठकर केवल प्रणाम करती थी। परन्तु अब मैं सुबह के समय थकान महसूस करती हूँ और सोयी रहती हूँ। ...

२८ अगस्त, १९०२ : श्रीमती हेमण्ड को

तुमने नि:सन्देह सुना होगा कि स्वामीजी पूरे शीतकाल

के दौरान बड़े अस्वस्थ थे। उनके बनारस से लौटने के बाद – जब हमने उन्हें यहाँ देखा, तो मैं सिहर उठी थी। तो भी किसी ने नहीं सोचा था कि वे देहत्याग कर देंगे। उनका बहुत सारा कार्य बाकी था। उस समय पहली भेंट के समय उन्होंने कहा था कि वे चले जाएँगे, परन्तु हमने सोचा था कि वे जापान जाएँगे। ... इसके बाद उन्होंने एक बड़ी ही कठोर चिकित्सा-पद्धति को अपनाया, जिसमें चरम गर्मी के तीन महीनों के दौरान उन्हें पीने को पानी नहीं दिया जाता था, केवल दूध पर ही रहना पड़ता था। उनका शरीर ज्योतिर्मय दिखने लगा था, ठीक जैसे वे लंदन में दिखा करते थे। इस अवधि के दौरान उनका आदेश था कि (मठ के) सभी लोग सूर्योदय के पूर्व ही – ३.३० या ४ बजे उठ जाएँ और गंगाजी में डुबकी लगाने के बाद ध्यान करने के लिये मन्दिर में उपस्थित हों। परन्तु उनके स्नायु पूर्णत: जीर्ण हो चुके थे और सुधार मुख्यत: शरीर में ही आया था। उनके मन या स्नायुओं की चाहे जो भी अवस्था रही हो, परन्तु उनकी काया पर फैला हुआ वह अद्‌भुत दिव्य आलोक क्रमश: उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होता रहा। परिवर्तन – देहत्याग के दस दिन पहले से दिखना आरम्भ हुआ। आठ दिनों पूर्व जब मैं आयी, तो वे बोले, ''मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं मृत्यु के समीप जा रहा हूँ; और एक 'महान् तपस्या और ध्यान' का भाव मुझे अभिभूत करता जा रहा है। आजकल मैं प्रतिदिन कई घण्टे मन्दिर में बिताता हूँ।''

जब वे बोल रहे थे, तभी एक छिपकली ने आवाज की। यहाँ के लोगों में एक अन्धविश्वास है कि छिपकली की आवाज किसी सत्य-सिद्धि का संकेत देती है, परन्तु मेरा निश्चित विश्वास था कि अब भी स्वामीजी की आयु का कम-से-कम तीन-चार साल बाकी है, अत: मैंने उस ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। वह रविवार का दिन था – और शुक्रवार के दिन वे हमसे चिर विदा हो गये।

बुधवार के दिन मैं पुन: गयी और नौ बजे से लेकर दोपहर तक वहीं रही। अहा, उन्होंने कितना मधुर व्यवहार किया! अब सोचती हूँ – वे जानते थे कि मैं उन्हें दुबारा नहीं देख सकूँगी। कितना आशीर्वाद! कितनी मधुरता! मैं तुम्हें बता नहीं सकती। काश, यदि मैं समझ सकी होती! चूँकि वे बड़े अच्छे दिख रहे थे और मैं उनकी आवश्यक देखभाल के विषय में ही सोच रही थी, इसीलिये मैंने ऐसा कोई विषय नहीं उठाया, जिससे उनका मन उत्तेजित हो, कहीं वे थक न जाएँ, इसलिये मैं अधिक देर ठहरना भी नहीं चाहती थी। परन्तु यदि मैं जान पाती, तो प्रत्येक क्षण कितना मूल्यवान हो उठता! परन्तु यह बात कितनी असहनीय हो उठी है!

उन्होंने हठपूर्वक स्वयं ही मेरी परिचर्या की (यह बात किसी से कहना मत), मेरे भोजन के समय पंखा झलते रहे, मेरा हाथ धुला दिया, आदि आदि। मैंने कहा, ''स्वामीजी, आपका ऐसा करना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है, बल्कि मुझे आपके लिये यह सब करना चाहिये।'' इस पर वे हँसे और अपने साहसी भाव से बोले, ''परन्तु ईसा ने भी तो अपने शिष्यों के पाँव धोये थे।'' मेरे मुख से यह बात निकलते-निकलते रह गयी, ''परन्तु वह तो उनका अन्तिम भोज था।'' ईश्वर को धन्यवाद कि मैंने वैसा कहा नहीं।

इस प्रकार मैं चली आयी। शुक्रवार के दिन उन्होंने (मुझे) कलकत्ते में सूचना भेजी कि उन्होंने इतना अच्छा कभी महसूस नहीं किया। दोपहर तक वे मन्दिर में ही रहे। इसके बाद उन्होंने तीन घण्टे तक ब्रह्मचारियों को संस्कृत पढ़ाया। पूरे अपराह्न के दौरान वे बड़ी मधुरतापूर्वक अनेक लोगों के साथ बातें करते रहे। उनके द्वारा भेजा गया समाचार साढ़े चार बजे कलकत्ते पहुँचा। उसी समय उन्होंने एक कप गरम दूध तथा जल पीया और टहलने जाकर दो घण्टे के बाद लौट आये। तदुपरान्त अपने कमरे में जाकर उन्होंने बाकी सबको बाहर भेज दिया, ताकि वे सूर्यास्त के समय एकान्त में किये जानेवाले संध्या के 'ध्यान' में बैठ सकें। बड़े आश्चर्य की बात है कि वे प्रचलित पद्धति का उल्लंघन करके उत्तर-पश्चिम की ओर मुख करके ध्यान में बैठे रहे। करीब घण्टे भर बाद वे मुड़कर लेट गये और एक ब्रह्मचारी को बुलाकर अपने पाँव दबाने और पंखा झलने को कहा। इसके बाद वे शान्त भाव से सो गये।

सहसा निद्रा के भीतर एक सिहरन, मानो एक रुदन, एक भारी साँस, इसके बाद एक लम्बा विराम, फिर एक साँस और यहीं सब समाप्त हो गया। हमारे परमप्रिय गुरुदेव हमसे सदा के लिये बिछुड़ चुके थे।

अहा, उन अन्तिम दिनों के दौरान उन्होंने हम लोगों पर, जिस (अद्‌भुत) माधुर्य तथा आशीर्वाद की छाया का विस्तार किया था, उसका भला कौन वर्णन कर सकता है? **(क्रमश:)**

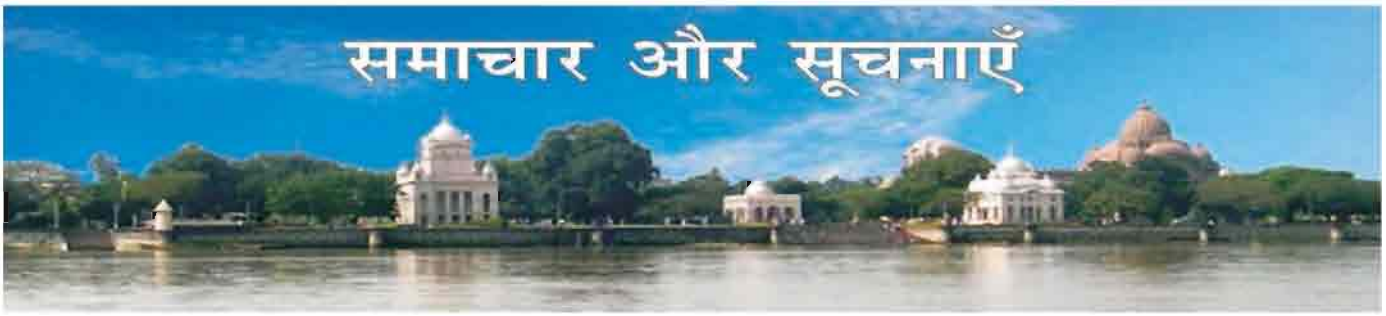

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भावप्रचार परिषद की वार्षिक सभा सम्पन्न हुई

रामकृष्ण विवेकानन्द वेदान्त सेवा समिति के तत्त्वावधान में २१, २२ सितम्बर, २०१९ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भावप्रचार परिषद की वार्षिक सभा का आयोजन किया गया। २१ सितम्बर को प्रात: ९ बजे से परिषद की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम परिषद के प्रतिनिधियों द्वारा अपने-अपने आश्रम का ६ माह का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। उसके बाद सन्तों के द्वारा विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए गए।

विधायी सत्र में विवेकानन्द विद्यापीठ के मनोज यादव के द्वारा पिछली सभा का संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात् दो आश्रमों – श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द संस्कृति सेवा समिति, हेमूनगर, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) और रामकृष्ण विवेकानन्द सेवा समिति, बालाघाट (मध्य प्रदेश) को रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद की सदस्यता प्रदान की गई।

२२ सितम्बर, २०१९ को भक्त सम्मेलन था। कार्यक्रम प्रात: ८.३० में प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन को विभिन्न विषयों पर स्वामी सेवाव्रतानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी नित्यज्ञानानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द और स्वामी ब्रह्मस्थानन्द जी ने सम्बोधित किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, ढाका, बांगलादेश में ७ जुलाई को मीरपुर, ढाका में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें १००० लोग उपस्थित थे। **रामकृष्ण सेन्टर ऑफ साउथ अफ्रिका, डरबन** में २३ मई, २०१९ से ७ जुलाई के अन्तर्गत ६ भक्त सम्मेलन एवं ३ संगीत कार्यक्रमों का आयोजन हुआ, जिसमें कुल ७३२ लोग उपस्थित थे।

रामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में २९ सितम्बर, २०१९ को सन्ध्या ५ बजे स्वामी विवेकानन्द के द्वारा शिकागो धर्ममहासभा में प्रदत्त व्याख्यान की १२५वीं जयन्ती मनाई गई। कार्यक्रम की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने की। विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने सभा को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव श्री पवन कुमार शर्मा जी ने अतिथियों का स्वागत और प्रारम्भिक उद्बोधन किया। प्रारम्भ में माँ सारदा पब्लिक स्कूल के बच्चों ने स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति पर पक्ष और विपक्ष में अपने सारगर्भित व्याख्यान दिए। स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने बच्चों को पुरस्कृत किया।

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में प्रदत्त व्याख्यान के १२५वें स्मरणोत्सव के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए गए, जिसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

रामकृष्ण मठ, वाराहनगर, कोलकाता ने २५ मई से १२ जुलाई के मध्य चार व्याख्यान आयोजित किए, जिसमें लगभग ४०० विद्यार्थी उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन विद्यालय, कोयम्बटुर के द्वारा २१ मार्च, २०१९ से २० जुलाई, २०१९ तक कोयम्बटुर एवं उसके समीप के ८ विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में कुल १३३८ विद्यार्थियों ने भाग लिया। सभी प्रतियोगिता स्थलों पर प्रतियोगिता के बाद व्याख्यान, पुरस्कार वितरण समारोह एवं नाट्य मंचन किया गया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, गोहाटी ने २९ जून, २०१९ को भक्त सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें १६७ भक्त उपस्थित हुए। **रामकृष्ण मठ, लखनऊ** में ४ जुलाई, २०१९ को सार्वजनिक सभा आयोजित की गई। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्रीराम नाईक ने जनसभा को सम्बोधित किया। **विवेकानन्द आश्रम, श्यामलाताल** में २९ जून, २०१९ चरित्र-निर्माण कार्यशाला आयोजित हुई, जिसमें ४६ विद्यार्थी एवं अन्य लोग उपस्थित थे।

'विवेक-ज्योति' में वर्ष २०१९ ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

अखण्डानन्द स्वामी – मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१३) १९, (१४) ७६, (१५) ११५, (१६) १६३, (१७) २१४, (१८) २६८, (१९)३२४, (२०) ३७२, (२१) ४५८, (२२) ५२२, (२३) ५६३, (२४) ६०२,

अलोकानन्द स्वामी – शारदीय दुर्गापूजा का पौराणिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व ४८९

आत्मानन्द, स्वामी – ईशावास्योपनिषद् (१३) २८, (१४) ७४, (१५) १३४, (१६) १८३, (१७) २३३, (१८) २७३, धर्म और विज्ञान : एक विश्लेषण २९६, ३५७, ४६०, जीवन में शान्ति प्राप्ति का रहस्य ५२०, जगज्जननी जानकी ५५२, ६०५,

उपाध्याय, पं. रामकिंकर – यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/६) १६, (५/७) ६५, (६/१) ११२, (६/२) १५९, (६/३) २०३, (७/१) २५६, (७/२) ३०६, (७/३) ३४९, (७/४) ४०२, (७/५) ४९५, (७/६) ५३९, (८/१) ५८९,

ओजोमयानन्द स्वामी – जीवन के विकास में इच्छाशक्ति का महत्त्व २१, सेवा द्वारा हम अपना ही कल्याण करते हैं १०४, ऐसी बानी बोलिए १५२, सेवा के विभिन्न आयाम २०९, अपने जीवन के अनुभव से सीखें २४८, समय को पहचानो ३६१, सेवा और चित्तशुद्धि ३१३, अनिकेत का निकेत ४६५, सेवा का व्यावहारिक स्वरूप ५१६, जीवन का नव प्रभात : उत्साह ५५८,

कुमावत बालकृष्ण – महामना पं. मालवीय के जीवन के चार सूत्र ६०७,

गाँधी जगदीश – जीवन-निर्माण की कुछ बातें ३३२,

गुप्त मुक्ता प्रसाद (मुक्तेश) – नित बहाओ इन्हें हरि नमन के लिए ३३१,

गुप्ता सीताराम – भूख न जाने धर्म की बात १८०, वास्तविक विजेता ४४०,

गौतमानन्द स्वामी – भगवान श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता ४९७, ५४७, ५९३,

गुरु गिरि मोहन पं. – हमारी गौरवशाली समृद्ध ऋषि परम्परा ५२६,

घोष अरविन्द – मेरी दृष्टि में श्रीरामकृष्ण - १३२,

चन्द्रमोहन – तुम विद्या ज्ञान प्रदाता हो ५४, तुम हो समरथ पूर्ण दयाला ३०५,

चेतनानन्द स्वामी – साधुओं के पावन प्रसंग (१) १२, (२) ६९, (३) ११०, (४) १५५, (५) २०७, (६) २५९, (७)३१०, (८) ३५२, (९) ४४२, (१०) ४८८, (११) ५७३, (१२) ६१४, जयरामबाटी : बंगाल का एक मनोरम ग्राम ५२४, शिकागो के पथ पर स्वामी विवेकानन्द ४३०,

जोशी तारादत्त – जग में तनया बहुत महान (कविता) २५५,

जोशी मीनल – आधुनिक काल में विश्वबन्धुत्व की प्रासंगिकता ४६३,

त्यागात्मानन्द स्वामी – विश्वधर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये विवेकानन्द कैसे प्रेरित हुए ४०५,

तन्निष्ठानन्द स्वामी – पंडित रामेन्द्र सुन्दर भक्तितीर्थ भट्टाचार्य की श्रीरामकृष्ण देव विषयक पवित्र स्मृतियाँ ५७, गौरी माँ और श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य ३२०, विश्वधर्म-सम्मेलन और पाश्चात्य यात्रा हेतु स्वामी विवेकानन्द को प्रेरित करनेवाले व्यक्ति ४१८,

तिवारी जितेन्द्र कुमार – वह मानव कहलाया ८४,

त्रिपाठी कृष्ण कुमार (डॉ.) – हे राम अब उन्मुक्ति पाना चाहता हूँ १७८.

त्रिपाठी भानुदत्त 'मधुरेश' – मिलते हैं भगवान ३४, प्रभु की कृपा अपार २२६, राम-नाम रस सबते भारी ३७३, बिगरी बनत-बनत बन जइहै ४३९, तुम मेरे नाथ! तुम्हारा मैं ५१५, प्रिय की पूजा में निशिदिन ५५६, प्रभो! मुझको दो प्यार ५९२,

टांटिया नन्दलाल – अद्भुत लोगों का सान्निध्य २२८,

टवाणी कृष्ण चन्द्र – कर्म करने की कला २८३, निराली है राजस्थान की संस्कृति ५०४

द्विवेदी पं. कामता प्रसाद – नमामि देवि नर्मदे २८५,

निखिलात्मानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द : भारतीय स्वतन्त्रता और समृद्धि के क्रान्तिकारी ३६७,

निखिलेश्वरानन्द स्वामी – आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२९) ४२, (३०) ८३, (३१) १३६, (३२) १८५,

नेमा पुरुषोत्तम – जय जय महाकाल ३५४, जय जय

केशरिया साफे की ३९०,

पद्माक्षानन्द स्वामी – मुझे परमवीर चक्र चाहिए ३५५, भैंसा ने मंत्र उच्चारित किया ४२६, बहन ने भाई को ऋणमुक्त किया ५००, बालक भक्त सुव्रत ५७१, महाराणा प्रताप को प्रेरित करने वाली बालिका ६०४,

पटले ओ.सी.– युवा शक्ति से ही होता राष्ट्र महान ३८०,

पंकज ए.पी.एन. – श्रीगुरुनानक देव तथा श्रीरामकृष्ण देव ११७, उत्कृष्ट जीवन के लिए भगवद्गीता २६४, श्रीगुरुग्रन्थ साहिब में भक्ति ५४२,

परमार बाबूलाल – हे भगवान विनती मेरी ६, करते रहिए सदा भजन ५१५,

पाण्डेय अजय कुमार – सबके देव गुरु नानक देव ३६५, क्या हम भी नींव की ईंट बन सकते हैं? ५०८,

पाण्डेय सुखदराम – मैं भी तुमको पाऊँ ५४, जन-जन के मन भाये २६३,

पेंढारकर, डॉ. शरद् चन्द्र – काम-क्रोध-मद-मोह माया बन्धनमूल ४४, सिद्धियाँ त्यागो ९२, खींच लो कृपाण, पड़े रहने दो म्यान १३३, जो करूँ, सो प्रभु सेवा १८७, तीरथ को जाइए, करके हृदय साफ २१९, मोह ममता छोड़, त्याग दे धन-मद-पद-अधिकार २६१, राजा की रक्षा, राज्य की सुरक्षा ३२३, संस्कृत सब भाषा की जननी ३६०, कबीर कुसंग न कीजिए, कबहुँ न होय कल्याण ४२५, स्वेद-कण मुक्तामणि जानो ५२७, ज्ञान की जननी : जिज्ञासा ५६२, मोहि कपट छल छिद्र न भावा ६०१,

पौराणिक आनन्द तिवारी – आलोकित हो तन-मन सारा ३१, माँ तेरी कृपा क्या! २१३, नौनिहाल भारत के प्यारे ५५६,

प्रधान अवधेश – स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण ४७३, ५१०, ५६७, ६११,

प्रपत्त्यानन्द, स्वामी – (सम्पादकीय) आत्ममंथन का महापर्व ७, श्रीरामकृष्ण के जीवन में माँ सरस्वती की आराधना ५५, १०२, युवा शक्ति के दो महान आदर्श पुरुष : श्रीहनुमानजी और स्वामी विवेकानन्द १५०, १९८, पानी में मीन पियासी २४६, मैं गीत तुम्हें सुनाने को ही गाता २९४, वसुन्धरा पर धधक रही - स्वतन्त्रता की आगी ३४०, शिकागो व्याख्यान की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि ३९१, अहिंसा का पुजारी : क्यों जन-जन का हिय हार है? (१) ४८६, (२) ५३४, वेदान्त के आलोक में श्रीमाँ सारदा ५८२, **लेख** - जय हो ! जय हो! अंगारमोती मइया १७६,

ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी – जय जगदीश्वरी मात सरस्वती ५४

ब्रह्मेशानन्द स्वामी – चित्त की क्रियाएँ और क्लिष्ट-अक्लिष्ट वृत्तियाँ ७८, अहिंसा परमो धर्मः १६५,२१६, युवैव धर्मशीलः स्यात् २५३, श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् ३०२, परिग्रहो हि दुःखाय ५३६, ६१६,

बोर्डिया मंजू – श्रीमाँ सारदा का दिव्य दाम्पत्य जीवन ५८४

भूतेशानन्द स्वामी – आध्यात्मिक जिज्ञासा (३७) ३०, (३८) ८१, (३९) १२९, (४०) १७७, (४१) २२७, (४२) २८०, (४३) ३२६, (४४) ३७६, (४५) ४२८, (४६) ५१३, (४७) ५५०, (४८) ६०९, स्वामी विवेकानन्द का भारत परिभ्रमण और शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन का तात्पर्य ४००,

महेन्द्रनाथ दत्त – अद्भुत श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द! ६१५,

मेवाड़ा धनराज – धन्य धन्य हो स्वामी विवेकानन्द ६, जय श्रीरामकृष्ण देव ३३१,

मेधजानन्द स्वामी – स्वामीजी की प्रार्थना ३७, भूल की धूल को झटकर आगे बढ़ें ९३, चाबी कहाँ रखी थी, मिल नहीं रही है १२४, श्रीरामचन्द्र के जीवन में विनम्रता १६२, उदार व्यवहार २२२, गुरु पूर्णिमा और आधुनिक जगत ३०९,

मोदी नरेन्द्र (प्रधानमंत्री) – स्वामी विवेकानन्द का शिकागो व्याख्यान ९

राजेश्वरानन्द सरस्वती स्वामी – सगुण साकार की झाँकी ६, आज अयोध्या धाम ५४, अवध में १२३, घर घर आनन्द छायो १७८, बिहरैं श्री भगवान अवध में... २२६, सीताराम गाए जा २६७, जिनके चित्त में गुरु ज्ञान बसै ३३१, धन्य ब्रज भूमि पद चूमत कन्हैया के ३५४, प्रभु जी हौं टैरत हौं कब को ४३९,

रामतत्त्वानन्द स्वामी – जय माँ सारदा रामदुलारी ६,

वर्मा ओम प्रकाश (डॉ.) – शिकागो धर्म-महासभा : सफलता का रहस्य और ऐतिहासिक महत्त्व ४४५, माँ तुम मेरी कैसी माँ हो (कविता) ५९२,

वर्मा कुसुम – (भजन) माँ ! भक्ति, ज्ञान प्यार दो ! ४१६,

वर्मा उषा (डॉ.) – स्वामी विवेकानन्द का चमत्कारी व्यक्तित्व ६३,

वर्मा विद्योत्तमा – अद्भुत बालक और अदभुत माँ ८७,

विवेकानन्द स्वामी – मुण्डक-उपनिषद-व्याख्या (७) ३५, (८) ८५, (९) १२५, (१०) १७४, (११) २२३, शिकागो के विश्वधर्म - सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त

ऐतिहासिक व्याख्यान ३९५,

व्रजप्राणा प्रव्राजिका – स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (११) ४०, (१२) ९०, (१३) १३८, (१४)१८८, (१५) २३०, (१६) २७१,

व्रजवासी बाबा – इस बार की शिवरात्रि (कविता) १३७,

शर्मा के.डी. डॉ.– वैदिक वाङ्मय के ग्रन्थ २७७, आत्मा का अस्तित्व और लक्षण ५९९,

शर्मा सत्येन्दु – हे सारदे माँ! हे सारदे माँ ! ६, बन जाऊँ मैं भी गंगा जल ८४, शिवार्चनम् १३०, भगवती स्तुति: १७९, ठाकुर बोलो कब आओगे ३३१, स्वामी विवेकानन्द स्तुति: ३९०, ठाकुर तुम मत ठुकरा देना ५१५,

शुद्धिदानन्द स्वामी – मूर्तिकार श्रीरामकृष्ण १०८,१७२,

श्रीवास्तव विजय कुमार – सोने वाले ओ मुसाफिर २२६, बन गये विवेकानन्द करके जीव सेवा ४६२, व्यर्थ न अपना समय गँवाओ ५९२,

श्रीलाल डॉ. – स्वतन्त्रता के लिए जो हँसते-हँसते बलिदान हुए ३४२,

श्रोत्रिय शरत चन्द्र – भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य ३७४

स्वामी शंकर लाल – ईश्वर से ही जगत है ४६२,

स्मरणानन्द स्वामी – वैश्विक चिन्तन के क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द के शिकागो व्याख्यान का योगदान ३९८,

सत्यरूपानन्द, स्वामी – नारी-शक्ति का आदर्श – माँ सारदा ३८, शरीर नहीं, मन के सौन्दर्य को देखो ७१, आध्यात्मिक जीवन हेतु उपयोगी बातें १३१, व्यावहारिक जीवन में सजग रहें १८२, इष्ट नाम का जप और ध्यान करें २३२, मन को अन्तर्मुखी करो २८२, आध्यात्मिक जीवन को स्वभाव बनाओ ३२८, मानसिक शुद्धि हेतु साधना ३७८, बड़े पुण्य से सत्संग मिलता है ४१७, मन से शुद्धि और मन से अशुद्धि है ४९४, सर्वश्रेष्ठ भक्ति का अंग : मातृत्व भाव ५४१, मध्य मार्ग : संतुलित जीवन का सुदृढ़ आधार ६१०,

सुहितानन्द, स्वामी – सारगाछी की स्मृतियाँ (७५) २५, (७६) ७२, (७७) १२२, (७८) १६९, (७९) २२०, (८०) २६२, (८१) ३१८, (८२) ३५९, (८३) ४१५, (८४) ५०१, (८५) ५५७, (८६) ५९७,

सुबोधानन्द स्वामी – प्रणाम-मंत्र ५३३,

सुब्बाराव एस.एन. (डॉ.) – भारतीय युवा : मेरी आशा के केन्द्र ३७९,

सेन अक्षय कुमार – रामकृष्ण का नाम गान कर १२३, रामकृष्णमय हो जाओ ३३३,

सोलंकी कमल सिंह – तुलसी विलक्षण सन्त हैं ३५४,

सोलंकी कप्तान सिंह – ऐसी स्मार्ट सिटी जो अयोध्या जैसी हो ३२,

अन्य संकलन

पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) – ५, ५३, १०१, १४९, १९७, २४५, २९३, ३३९, ३८९, ४८५, ५३३, ५८१

बच्चों का आँगन – स्वामी विवेकानन्द और टिकट परीक्षक २७, जिसने नेत्रहीनों को रोशनी दी ६८, निमाई और ब्राह्मण देवता १२८, हनुमानजी की शिक्षा १७१, भारत-भारती कवि मैथिली शरण गुप्त जी २००, बालक धन्ना जाट २७०, बालक उपमन्यु की गुरुभक्ति ३२९,

लेख एवं प्रसंग – श्रीमाँ सारदा देवी का पत्र ६०३, रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति की रिपोर्ट १४०,

दृग-दृश्य विवेक – (अनुवादक : स्वामी विदेहात्मानन्द) (१) २७६, (२) ३१२ (३) ३८१, (४) ४२९, (५) ५०३, (६) ५६६, (७) ५९६

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२५) १४ (२६) ६१ (२७) १०६, (२८) १५७, (२९) २०१, (३०) २५१, (३१) ३००, (३२) ३४७, (३३) ४३८, (३४) ५०६, (३५) ५५४ , (३६) ६१८,

स्तोत्र-भजनादि संकलन – विवेकपञ्चकम् ५, स्वामीजी आशीर्वाद करें ४३, सरस्वती-स्तोत्रम् ५३, श्रीरामकृष्णावतारस्तोत्रम् १०१, हनुमत्-वन्दना १४९, गंगा स्तुति: १९७, श्रीरामकृष्ण स्तुति: २४५, गुरु-वन्दना २९३, श्रीकृष्ण-वन्दना ३३९, विवेकानन्द-वन्दना ३८९, भवानी-स्तुति ४८५, सारदा स्तुति: ५८१

पुस्तक समीक्षा – स्वामी विवेकानन्द और राजस्थान ४७५, जगद्गुरु श्रीरामकृष्ण ४७६, आतंकनिर्मूलनं रामराज्ये ४७७, भागवत का शाश्वत सन्देश ५२७,

समाचार और सूचनाएँ – ४५, ९४, १४२, १९०, २३५, २८७, ३३४, ३८२, ४७८, ५२८, ५७५, ६२०

वार्षिक अनुक्रमणिका (२०१९) – ६२१